ओ३म्

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो अराव्णः॥

आर्य संकल्प

(बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष-38 सितम्बर अंक-8

योगीराज श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
कार्यालय : श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 (बिहार)

आर्य संकल्प

संरक्षक
भाई विरेन्द्र, सभा प्रधान

सम्पादक
संजय सत्यार्थी
मोबाईल-9006166168

सह सम्पादक
अरविन्द शास्त्री
मनोज शास्त्री
विवेक शास्त्री
प्रेम कुमार आर्य

सम्पादक मंडल
ज्ञानेश्वर शर्मा
सत्य प्रिय शास्त्री

कोषाध्यक्ष
मुकेश राय
स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन
नयाटोला, पटना-800 004
E-mail :
mantribraps@gmail.com
सदस्यता शुल्क
एक प्रति : 15/-
वार्षिक : 120/-
मुद्रक :
जय उमा प्रिन्टर्स, पटना

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रांगण में स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर सभा मंत्री संजय कुमार जी एवं सहयोगीगण द्वारा झण्डोतोलन।

आर्य संकल्प

-: सूची :-

क्रम	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	वेद मंत्र	1
2.	सम्पादकीय	2
3.	वेद प्रार्थना	3
4.	यज्ञ और वेद का सम्बन्ध	5
5.	मानव मात्र के कल्याण	10
6.	समाचार	16
7.	स्वाध्याय	18
8.	महर्षि के मानव-मात्र	22
9.	कड़वा सच	25
10.	उपनिषद् उपदेश	26

इस पत्रिका में दिये गये लेख लेखकों के अपने विचार हैं, इससे सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

सितम्बर

दु:ख का स्वागत

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं
विचृता बन्धमेतम्।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे
नाके अधिरोहयैनम्॥

(यजु. 12 । 63)

शब्दार्थ- (**निर्ऋते**) हे कृच्छापते! भीषण दु:ख! (**ते**) तुझे (**सु**) स्वागतपूर्वक (**नमः**) नमस्कार है (**तिग्मतेजः**) तीक्ष्ण तेज से युक्त तू (**एतम्**) इस (**अयस्मयम्**) लोहमय दृढ़ (**बन्धम्**) बन्धन को (**विचृत**) काट डाल, दूर कर दे (**यमेन यम्या**) मन और बुद्धि के द्वारा (**संविदाना**) सद्विवेक प्राप्त कराती हुई (**त्वम्**) तू (**एनम्**) इस मनुष्य को (**उत्तमे नाके**) उत्तम सुखमय लोक में, आनन्द की उच्चतम अवस्था में (**अधिरोहय**) स्थापित कर।

भावार्थ- संसार में दु:ख और सुख सबके ही ऊपर आते हैं। दु:ख प्राप्त होने पर मूर्ख रोते हैं, परन्तु ज्ञानी उसका स्वागत करते है। किसी ने कहा है-

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूर्ख भुगते रोय॥

1. दु:ख आने पर ज्ञानी और धीर वीर कहता है- दु:खो और आपत्तियो! आओ आपका स्वागत है, आपको नमस्कार हो।

2. निर्ऋते! तेरी धार बहुत तेज है, तू अपनी तीक्ष्ण धार से मेरे समस्त बन्धनों को काट दे। **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'** कर्मों को भोगकर ही उनसे छुटकारा मिल सकता है। कष्टों को सहकर ही हम बन्धनों से मुक्त हो सकते हैं।

3. कृच्छ्रापत्ते! आओ! दु:खरूपी भट्टी में पड़कर हमारा मन और हमारी बुद्धि निर्मल एवं पवित्र बनेगी। निर्मल मन और बुद्धि द्वारा हमें सद्ज्ञान तथा सद्विवेक की प्राप्ति होगी। इस सद्विवेक के द्वारा तू हमें उच्चतम आनन्द की स्थिति में पहुँचाएगी, अतः तूआ, हम तेरा स्वागत करते हैं।

■

सम्पादकीय

आर्य समाज का प्रमुख कार्य
वेद प्रचार

वेद प्रचार आर्य समाज का सबसे प्रमुख कार्य रहा है, जगत गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म माना है। एक ओर जहाँ, महात्मा बुद्ध ने अहिंसा को परम धर्म कहा वही दूसरी ओर महर्षि दयानन्द ने वेद को पढ़ना-पढ़ाना ही परम धर्म माना है। चूंकि अहिंसा धर्म के ग्यारह लक्षणों में एक का नाम है जो एक पक्ष को प्रदर्शित करता है परन्तु महर्षि ने जो धर्म की परिभाषा दी है। वह मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को छूता है। इसमें मानव का सर्वांगीण विकाश समाहित है। धर्म से ही मानव, मानव बनकर संसार में यश और कीर्ति को प्राप्त करता है।

जिस धर्म की कल्पना ऋषि ने की है उसका आदिश्रोत वेद ही है, जिसके प्रचार और प्रसार पर विशेष बल देते हुए इसकी पुरजोर वकालत की है। संसार के किसी महापुरूष ने इतनी हिम्मत नहीं दिखाई कि वो सत्य को स्थापित कर सके परन्तु महर्षि ने सिंहनाद करते हुए कहाकि ऐ दुनियां के लोगों वेदों की ओर लौटे। अतः आर्य समाज को वेदों के पठन-पाठन, रक्षणतथा परम्परा को जीवित रखने आदि की वसियत विरासत में मिली है। इसलिये वेदों का प्रचार प्रचार इसका मुख्य कार्य है। वेद प्रचार की आज के जीवन व जगत की महती आवश्यकता है। जिस वातावरण, परिस्थितियों एवं हालात में संसार जी रहा है, चारो ओर अंधेरा, हिंसा, मारकाट, पशुता, दुःख चिंता आदि फैल रहे हैं इस विषम परिस्थिति में हमें ज्ञान द्वारा प्रदर्शित औषधि दे सकता है तो वह है वेद ज्ञान द्वारा प्रदर्शित विचार धारा। वेदका चिंतन हमें दुनियाँ में सुख शांति एवं आनन्द पूर्वक जीना सिखाता है वेद के पठन-पाठन से ही समृद्धि आ सकती है, यही कल्याण कारी मार्ग है।

अगर हम अपने आप को आर्य समाजी मानते हैं तो आत्मनिरीक्षण एवं आत्म शोधन करना होगा, अपने स्वार्थ, अहंकार एवं पद्लिप्सा से ऊपर उठना, होगा। चूंकि वेद प्रचार का उत्तरदायित्व आर्य समाज के ऊपर है इसलिये आर्य समाज की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए प्रचार-प्रसार के आधुनिक संसाधनों को अपनाना होगा। यज्ञ एवं वेद कथा का आयोजन चौक-चौराहों पर श्रद्धा के साथ करना होगा। अपने पुरोहितों विद्वानों सन्यासियों को आदरपूर्वक उच्चासन पर बैठाना होगा। हम अपने विद्वानों को मंच पर इस ढंग से प्रस्तुत करें कि जिससे लोगों के मनों में उनको सुनने की उत्सुकता, जिज्ञासा व आकांक्षा बढ़े। तभी कार्यक्रम प्रभावी होगा।

आर्य समाज के पास संसार को देने के लिये जैसी आपस वैचारिक सम्पदाह वैसी अन्य किसी विचारधारा वाले के पास नहीं है। इसलिये हमारा कर्तव्य है कि वेद प्रचार को आगे बढ़ावे, इसमें लापरवाही ऋषि हत्या के बराबर है।

''वेद की ज्योति से जग को जगमगा दो आर्यो।
इस तरह से ऋण ऋषिवर का चुका दो आर्यो।''

सम्पादक
पं. संजय सत्यार्थी

वेद प्रार्थना

ते हि पुत्रासोऽअदितेः प्र जीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्त्रम्

(यजुर्वेद 3/33)

ब्दार्थ :- ते हि = वे ही निश्चय से **पुत्रास :** त्र हैं, सन्तान हैं, पालक हैं, रक्षक है **अदितेः** = श्वर के / मातृभूमि के जो **प्र जीवसे** = जीवन लिए **मर्त्याय** = मनुष्यसमाज के लिए, राष्ट्र लिए **ज्योतिः**= प्रकाश-ज्ञान-आदर्श **च्छन्ति**= देते हैं, फैलाते है **अजस्त्रम्**= निरंतर।

याख्या:- मातृभूमि के, ईश्वर के सच्चे सपूत वे ही मनुष्य होते हैं जो मनुष्य समाज में श्वरीय वेद की ज्योति जलाते हैं। समाज में याप्त अभाव, अन्याय, अज्ञान, पाखण्ड, न्धविश्वास, स्वार्थ, नास्तिकता, भोगवाद से स्त समाज को सत्य, ज्ञान, धर्म, न्याय, समृद्धि, क्षा, सेवा, परोपकार, दया, क्षमा, संयम, त्याग था तपस्या से युक्त करते हैं।

जैसे सूर्य के पृष्ठभाग वाली पृथ्वी पर न्धकार व्याप्त हो जाता है तब उस अन्धकार ा आश्रय लेकर हिंसक क्रूर पशु-पक्षी ीट-पतंग चारों तरफ विचरने लगते हैं ठीक से ही मानव समाज में **जब सूर्य रूपी द-ज्ञान का अस्त हो जाता है तब अनेक कार के अवैदिक मत-पंथ-संप्रदाय, ाडमों को अपना स्वार्थ सिद्ध करने के ाए अवसर मिल जाता है।** आदर्श वेदवित् र्मिक, परोपकारी, वैराग्यवान, निष्काम-भावना वाले, विद्वानों का अभाव हो जाने के कारण, समाज में सच्चे ईश्वर, धर्म, शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार, नैतिकता का लोप हो जाता है और सत्य, न्याय, दया, क्षमा, संयम, धैर्य, प्रेम और परोपकार के अभाव के कारण परिवार, समाज तथा राष्ट्र में सर्वत्र भय, भ्रम, संशय, अशान्ति, चिन्ता, स्वार्थ व दुःख का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है।

इन सब दुरावस्थाओं को दूर करने का एक ही श्रेष्ठतम उपाय है सत्य सनातन वैदिक धर्म की समाज में पुनः स्थापना करना। इसके लिए त्यागी, तपस्वी, वैराग्यवान्, नैष्ठिक, धार्मिक, ईश्वरभक्त, निष्कामसेवी विद्वानों का होना आवश्यक है जो सर्वस्व की आहुति लगाकर, समाज में व्याप्त अज्ञान, अन्याय, अभाव को अपने विचारों, प्रवचनों तथा सुकर्मों से दूर कर देवें।

केवल अपने वृद्ध माता-पिता को दो समय की रोटी खिला देने, अच्छे वस्त्र पहिना देने से ही हिसाब चुकता नहीं हो जाता, जबकि देश-समाज में लाखों करोड़ों माताएँ व भाई-बहन अज्ञान, अन्याय, अभाव से ग्रस्त हों, वे भी हमारे ही माता-पिता व भाई-बहन हैं। उनका जीवनस्तर उन्नत करना भी हमारा कर्त्तव्य

है। समाजिक राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए व्यक्तिगत यहाँ तक कि पारिवारिक स्वार्थो की बलि चढ़ा देना ही सच्ची आस्तिकता, ईश्वर भक्ति, राष्ट्रीयता, मानवता का प्रतीक है। सच्चे ईश्वर पुत्र, मातृभूमि के पुत्र, वे ही हैं, जो समाज राष्ट्र में आदर्शों की स्थापना के लिए तन-मन-धन का, सर्वस्व का त्याग करते हैं, ऐसी उच्चतर प्रकृति वालों को ही सच्चा ईश्वर भक्त कहा जा सकता है।

हे परमेश्वर! कृपा करो, हमारे देश में ऐसे ईश्वर पुत्र उत्पन्न हों, जो कि राष्ट्र-समाज राष्ट्र की इस दुरावस्था को सुधारने हेतु सर्वस्व की आहुति दे देवें। हे प्रभो! हमारी माताएँ बाल्यकाल से ही, गोद में ही, बल्कि गर्भावस्था में ही अपनी सन्तानों में ऐसी उदात्त भावनाएँ भर दें कि वे राष्ट्र की उन्नति के लिए जीवन को समर्पित कर दें। माता-पिता अपने सन्तानों के मन में यह बातें भर दें कि "आज समाज राष्ट्र में प्राचीन सत्य सनातन वैदिक मान्यताओं-मर्यादाओं का, विधि-विधानों का ह्रास हो गया है, मैं उसके उत्थान के लिए आत्मोत्सर्ग करने से भी नहीं हिचकिचाऊँगा।" केवल माता-पिता, पुत्र-पुत्री, सम्बन्धियों की रक्षा-पालन, सेवा-सुश्रूषा से ही सन्तुष्ट नहीं रहूँगा, अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के व्यक्तियों के जीवन को उन्नत करने के लिए, सच्चे ईश्वर, सच्चे धर्म की प्रचार-प्रसार करूँगा। यज्ञ, सन्ध्या, स्वाध्याय, सत्संग, सेवा, आदर्श दिनचर्या, सात्विक भोजन, विनम्रता, सरलता, त्याग, तपस्या, पुरुषार्थ, संयम आदि वैदिक आदर्श परम्पराओं का प्रचार-प्रसार करूँगा।"

हे प्रभो! अब तो आप से ही प्रार्थना है कि हमारे हृदयों में समाजोद्धार, देशोद्धार के सुसंस्कारों को भर दो। हमें लुप्त होती जा रही गौरवमयी वैदिक संस्कृति की पुनः स्थापना के लिए प्रेरित करो, हम सर्वात्मना सर्वस्व की आहुति देकर भी समाज राष्ट्र विश्व में व्याप्त अज्ञान-अन्धकार को दूर करके, वैदिकज्ञान का प्रकाश करें जिससे धरती पर पुनः सुख, शान्ति, प्रेम, निष्ठा, सद्भाव, निर्भीकता व स्वतन्त्रता की स्थापना हो।

वेद की ज्योति से जग को । जगमगा दो आर्यों। इस तरह से ऋण ऋषिवर । का चुका दो आर्यों॥

यज्ञ और वेद का सम्बन्ध

डॉ0 शारदा वर्मा, हरियाणा

वेद एवं यज्ञ का सम्बन्ध शरीर एवं प्राण की भांति है। वेद शरीर है, तो यज्ञ उसका प्राण है, तथा ब्रह्म ही इस वेद रूपी शरीर में रहने वाला आत्मतत्त्व है, जिसके आधार पर वेद एवं यज्ञ, दोनों ही प्रतिष्ठित हैं, क्रियाशील हैं। शरीर में जीवात्मा अदृश्य है किन्तु प्राण दृश्य यद्वा स्पृश्य एवं अनुभूतिगम्य है। शरीर प्राण के बिना नहीं रह सकता। प्राणों से ही शरीर में जीवन है। प्राण निकलते ही वह मृत है। इसी प्रकार वेद का प्राण यज्ञ है। वेदों में अनेक विद्याओं का प्रतिपादन है, किन्तु यज्ञ उनमें सर्वप्रमुख एवं सर्वश्रेष्ठ है। यह भी कहा जा सकता है कि यज्ञिय भाव निकाल दिया जाए तो वहां असुरत्त्व भी प्रवेश कर सकता है। संसार में दो ही तत्त्व हैं, जो विविध रूपों को धारण किये हुए हैं- दैव तथा असुर। यज्ञ देवों का प्रापक है। उनका प्रतिपादक है जबकि असुर यज्ञ के विध्वंसक हैं, क्योंकि उनका लक्ष्य अंसु केवल प्राण है। असुबु रमन्ते के कारण ही वे है। यहां व्यष्टिवाद है। स्वार्थ परायणता है जबकि यज्ञमें समाष्टिवाद तथा परार्थ है। मेरी छवि मेरा यज्ञिय कार्य भी मेरे लिए न होकर समस्त विश्व के लिए हो, इस भावना से यजमान अपनी आहुति को अग्नि में समर्पित करके 'इदन्न मम' का पाठ करता है। यह आहुति न केवल चेतन प्राणियों के लिए, अपितु जड़ जगत् के लिए भी समान रूप में लाभकारी हो, यही यज्ञकर्त्ता की कामना है, यही उसका उद्देश्य है। इसीलिए वह जल के लिए भी आहुति देता है, सूर्य के लिए भी देता है। यज्ञकुण्ड में आहुति देने का यही अभिप्राय है कि वह आहुति यहां से उठकर सम्पूर्ण वायुमण्डल में फैल जाए। उसे सुगन्धित तथा रोगरहित कर दे। यही यज्ञिय आहुति दूषित जलों में प्रवेश करके उन्हें शुद्ध करती हुयी अन्त में सूर्य को प्राप्त हो जाए। चार अंगुल परिणाम वाले यज्ञ में डाली गयी आहुति बहुत थोड़ी थी, बहुत छोटी थी।यह उसका वामन स्वरूप था, किन्तु वही आहुति बाद में विस्तार को धारण करते-करते समस्त भूमण्डल में, जल में, स्थल में, वनस्पतियों में, वायु में, अन्तरिक्ष में, द्युलोक में सर्वत्र व्याप्त हो गयी। यही उसका विष्णु स्वरूप है। विष्णु की व्युत्पत्ति 'विप्ल व्याप्ती' धातु से ही होती है। विष्णु के द्वारा पृथिवी का त्रिधा विक्रमण वेदों, अन्य शास्त्रों तथा लोक कथाओं तक में सुप्रसिद्ध है। यह यज्ञ ही वह विष्णु है जो एक छोटे से यज्ञकुण्ड से वामन रूप में प्रादुर्भूत होकर, पुनः व्यापक विष्णु स्वरूप को धारण करके तीनों लोकों में फैल जाता है। इसी रहस्य को स्पष्ट

करते हुए ब्राह्मण ग्रन्थों ने स्पष्ट रूप में यज्ञ को ही विष्णु कह दिया। तीन देवों के रूप में भी विष्णु को जगत् का पालक माना गया है। यज्ञ भी संसार का पालक है, वर्धक है। वेदों में विष्णु का पर्याप्त वर्णन है, तथा वह अति महिमाशाली देव है। यद्यपि वहां पर विष्णु के अन्य अर्थ भी हैं, तथापि विष्णु का यज्ञिय पक्ष अति महत्त्वपूर्ण है, जिसका प्रतिपादन वेदों में विशद् रूप में जम कर किया गया है।

यज्ञ एवं वेद का सम्बन्ध कितना प्रगाढ़ है, यह इससे ही सुस्पष्ट है कि ऋग्वेद का प्रारम्भ ही 'यज्ञ' से होता है। ऋग्वेद का ऋषि अग्नि को यज्ञिय देव, ऋत्विक, पुरोहित, होता तथा 'रत्नधातमाम्' विशेषणों से संयुक्त करता हुआ उसका स्तवन करता है। इतना ही नहीं, अपितु इसी सूक्त में आगे अग्नि के माध्यम से ऐश्वर्य प्राप्त करने की प्रार्थना भी की गयी है। इससे स्पष्ट है कि यह केवल विद्युत रूप में व्याप्त रहा तो यह अग्नि का विष्णु स्वरूप है। उसके इसी विष्णु स्वरूप के द्वाराहम विविध एश्वर्यो को प्राप्त करें, ऐसा वेद कहता है।

वेद यज्ञ को संसार का आधार मानता है। यह संसार यज्ञ के ऊपर ही टिका हुआ है। यज्ञ इसका प्राण है, जीवनाधार है। यज्ञ को समस्त संसार की नाभि कहने में वेद का अभिप्राय: यही है। जिस प्रकार न केवल जन्म के बाद अपितु जन्म से पहले भी मनुष्य का जीवन उसकी नाभि पर आश्रित रहता है क्योंकि बच्चा (नाल) नाभि के द्वारा ही गर्भ में माता के शरीर से जुड़ा रहता है। जन्म के पश्चात् उस नाल को काट दिया जाता है। अब भी नाभि ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। नाभि उदर में स्थित है, तथा जो भी अनादि पदार्थ हम उदर में पहुंचाते हैं, उसे नाभि में स्थित जठराग्नि भस्म करके समस्त शरीर में पहुंचा देता है, अपने पास नहीं रखता। यज्ञ की भी यही प्रक्रिया है। अग्नि हवि को भस्म करके वायु को सौंप देता है। वायु उसे विश्व में बिखेर देता है। संसार भी इसी प्रकार की यज्ञिय भावना पर जीवित रहेगा कि मैं जो भी कमाऊं, उसे यज्ञाग्नि की भांति सहस्त्र गुण करके विश्व को लौटा दूं। वेद ऐसे ही यज्ञ का प्रतिपादक है, चाहे वह लघु रूप में हो या व्यापक रूप में।

वेद की दृष्टि में ऐसा यज्ञ सृष्टि के प्रारम्भ से ही समस्त विश्व में हो रहा है। यह यज्ञ सृष्टि के प्रारम्भ में ही प्रकट हो जाता है, तथा फिर वृद्धि को ही प्राप्त करता रहता है। यज्ञ की वृद्धि यही है कि न केवल चेतन प्राणी, अपितु सूर्य, चन्द्र आदि जड़देव भी निरन्तर ऐसा यज्ञ कर रहे हैं। इतना ही नहीं, अपितु इस विश्व का निर्माण भी यज्ञ के द्वारा ही हुआ है। पाणिनि मुनि ने 'यज्ञ देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०) धातु पढ़ी है। सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकृति के

रमाणुपरस्पर संगत होकर इसी यज्ञ को तो कर हे थे, जिससे कि सृष्टि बनी। इस प्रकार वेद की ष्टि में यज्ञ सृष्टि के प्रारम्भ से अब तक नवरत चला आ रहा है, तथा अभी भी निरन्तर ो रहा है। इसीलिए वेद तो समस्त पृथिवी को ही ज्ञवेदि मान लेता है। विश्व का प्रत्येक पदार्थ इस दिपर यज्ञ कर रहा है। सृष्टि के आदि में रमेश्वर ने यह यज्ञ किया था तथा अब समस्त श्व ही इसे कर रहा है।

वेद का यज्ञिय दृष्टि अति व्यापक है। हां पर अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन तथा म भी प्राप्त होते हैं। स्थूल रूप में इन सभी यज्ञों ो दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है- ध्यात्म यज्ञ तथा भौतिक यज्ञ। जिस प्रकार र्वप्रथम यज्ञकुण्ड में समिधाएं रखकर अग्नि ज्वलित की जाती है, उसी प्रकार अध्यात्म यज्ञ यजमान अपने आत्मा ही तेरे लिए समिधातुल्य । इस अध्यात्म यज्ञ के द्वारा मैं सूर्य के समान योतिर्मान् बनूं। सूर्य के समान तेजस्वी बनूं। रात्रि र्य दिखलायी नहीं देता किन्तु तब भी अग्नि काश तो रहात ही है, भले ही वह मन्द हो। मजान भी संकल्प करता है, कि मेरा तेज, मेरी योति भी कभी बिल्कुल समाप्त नहीं होगी। इसी भिप्राय से वह यज्ञकुण्ड में ग्निज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा' (यजु० 3/9) ह कर आहुति देता है। जिस प्रकार भौतिक यज्ञ में ब्रह्मा, होता, उद्गाता तथा अध्वर्यु ये चार ऋत्विज होते हैं, उसी प्रकार अध्यात्म यज्ञ में जीवात्मा ही होता बनता है। बुद्धि अध्वर्यु तथा मन उद्गाता है। इस यज्ञ में परमेश्वर ब्रह्मा बनता है।

भौतिक यज्ञों के तो वेद में कई प्रकार हैं। वे यद्यपि विविध प्रयोजनों के लिए है। तथापि सबका उद्देश्य एक ही है- मनुष्य को निष्पाप शुद्धचारी बनाना। इसी अभिप्राय से यजुर्वेद में कहा गया है कि यजमान के सभी संकल्प शुभ एवं सत्य ही हों, अशुभ नहीं। इस शुचिता को उत्पन्न करने के लिए वेद भी दृष्टि में यज्ञ ही एक मात्र साधन है। इसलिए वेद व्यक्ति की वाणी, चक्षु, श्रोत्र आदि सभी इन्द्रियों, मति, सुमति, मन एवं आत्मा को भी यज्ञ के द्वारा पवित्र एवं समर्थ बनाने की बात करता है। इतना ही नहीं, अपितु वेद तो सम्पूर्ण मानव आयु को भी यज्ञ से ही पवित्र करना चाहता है। इस प्रकार यह यज्ञ सबको पवित्र करने वाला है, किन्तु प्रश्न है कि यह स्वयं यज्ञ किससे पवित्र होगा? इसमें कोई अपवित्रता न आ जाए, इसलिए यजमान प्रार्थना करता है कि यज्ञस्वरूप परमेश्वर इस यज्ञ को भी पवित्र करे। इसी अभिप्राय से वेद में एक अन्य मंत्र भी आता है कि इस यज्ञ की सात परिधियां तथा इक्कीस समिधाएं थी। देवों ने यज्ञ का विस्तार करते हुए पुरुष पशु का यज्ञ में बांधा।

वस्तुतः यहां पर ऐसे पुरुष को जो आसुरी मार्ग अपनाकर पशुतुल्य है, यज्ञिय नियमों में बांधकर, मर्यादित करके निष्पाप करने की बात कही गयी है, किन्तु इस तत्त्व को न समझकर कुछ लोगों ने वाममार्ग के प्रभाव या अपनी अज्ञानता से यज्ञ में पशुओं की बलि देनी भी प्रारम्भ कर दी। महात्मा बुद्ध से पूर्व ऐसा ही समय था। इसीलिए उन्हें ऐसे यज्ञों का प्रतिख्यान करना पड़ा। यज्ञ में किसी भी प्रकार की बलि या हिंसा का विधान नहीं है, इसलिए वेद में यज्ञ का एक नाम अध्वर भी है। ध्वरा हिंसा को कहते हैं, तथा यज्ञ में इसका प्रतिषेध किया गया है। वेद में कहा गया है कि हिंसादि दोषों से रहित यज्ञ ही देवों को व्याप्त होता है।

यज्ञों में बलि प्रथा के समर्थन में 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' जैसी उक्तियों का भी आश्रय लिया गया, किन्तु इस उक्ति के मर्म को नहीं समझा गया। इस उक्ति का तात्पर्य यह नहीं है कि यज्ञ में की गयी हिंसा हिंसा नहीं माननी चाहिए, अपितु इसका अर्थ तो यह है कि वेद जिसकी हिंसा, वध का आदेश देता है, उसे हिंसा न मानना चाहिए। यह बात बहुत स्पष्ट है कि वेद दुष्टों, पापियों, राष्ट्र तथा समाज को घेरने वाले वृत्रों के वध की आज्ञा देता है, तथा संसार को आर्य-श्रेष्ठ बनाने की प्रेरणा देता है। यज्ञ को तो वेद ने स्पष्ट शब्दों में अध्वर कह दिया। अपनी ही बात का खण्डन वेद कैसे करेगा?

यज्ञ के विश्वपुष् तथा महिमा को देखते हुए ही वेद में कहा गया है कि यज्ञ तथा यज्ञपति की हिंसा मत करो। सविता देव से यज्ञ तथा यज्ञपति को यज्ञार्थ प्रेरित करने की प्रार्थना विषयक मंत्र वेद में कई बार आया है। वहां कहा गया है कि ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए इन्हें, प्रेरितकरो, अर्थात् इनकी बृद्धि करो।

यज्ञ तथा वेद के उत्तम सम्बन्ध को देखते हुए यह कल्पना भी करली गयी थी कि वेदों का प्रयोजन यज्ञों का प्रतिपादन मात्र है। इतना ही नहीं, अपितु मीमांसाकार तो यह भी कहते हैं कि वेदों का प्रयोजन यज्ञ मात्र है। अतः जो मंत्र यज्ञपरक नहीं हैं, वे अनर्थक है। यह भ्रान्त धारणा थी क्योंकि वेदों में केवल यज्ञ विद्या ही नहीं, अपितु नाना विद्याएं विद्यमान है। विज्ञान, कला, कौशल, शिल्प, गणित, राजनीति, ज्योतिष्, आयुर्वेद, मनोविज्ञान आदि अनेक विद्याएं वेदों में विद्यामन हैं। इसीलिए मनु ने वे के लिए 'सर्वज्ञानमयो हि सः' कहा है। वेद अनुसार यज्ञ देवों के सुख की ओर गति करता है अर्थात् देवों को सर्वविध सुख प्राप्त कराता है, अथर्ववेद में कहा गया है कि यज्ञ देवों का अधिपति होना है। यह यज्ञ ही इन्द्र अर्थात् आत्मा की सर्वविध उन्नति का साधन है। शतपथ ब्राह्मण में वेद की इसी भावना को इस रूप में व्यक्त

किया गया है कि यज्ञ सभी देवों तथा प्राणियों को आत्मा है। यज्ञ की समृद्धि से यजमान प्रजा तथा पशु आदि से समृद्ध होता है। यज्ञ की हानि होने से यजमान के प्रजा आदि की भी हानि होती है।

यज्ञ व्यक्ति, समाज एवं, राष्ट्र एवं विश्व की सर्वविध उन्नति का साधन है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक आदि सभी उन्नतियां इससे प्राप्त होती हैं। इसी अभिप्राय से अथर्ववेद में यज्ञ को विश्वतोधार कहा गया है। अर्थात् इसकी धाराएं सभी के लिए सब ओर जाती हैं। अत: विद्वान् जन इसे यज्ञ की बृद्धि करते है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यज्ञों का प्रतिपादन करना वेद का मुख्य उद्देश्य है, किन्तु वेद केवल यज्ञ के लिए ही नहीं हैं। इसके अतिरिक्त वेदों में प्रतिपादित यज्ञ का स्वरूप यज्ञकुण्ड में आहुति देकर अग्निहोत्रादि करना मात्र नहीं है, अपितु यज्ञों के अनेक प्रकार हैं। अध्यात्म यज्ञ भी इनमें प्रमुख है। यज्ञ का उद्देश्य मानव के तन मन को पवित्र करके उसे पूर्ण समर्थ एवं समाजोपयोगी बनाना है। शिशु की उत्पत्ति से पूर्व ही माता के उदरस्थगर्भ को भी वेद यज्ञिय बना देना चाहता हैं। उस का लक्ष्य समष्टि हो, व्यष्टि न तथा करे, जो उत्पन्न होने के पश्चात् भी यज्ञिय भावना से ओत-प्रोत होकर देवत्व को धारण करे, असुरत्त्व को नहीं। यही है वेद तथा यज्ञ का व्यापक स्वरूप।

बढ़े-चलो

वैदिक अभिय ऋचाएं,
ददाति नव जागृति।
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'
ऋषि साधना पुकारती।।

धर्मज्ञ धीर पुत्र हो,
ऋषि सन्देश जान लो।
ओ३म् ध्वज कर में ले,
बढ़े चलो! बढ़े चलो।।

पथ तेरा वीरान हो,
चाहे प्रखर चट्टान हो।
सत्य के प्रकाश हित,
जीवन तेरा बलिदान हो।।

तुम शिष्य दयानन्द के,
दृढ़ संकल्प ठान लो।
ओ३म् ध्वज कर में ले,
बढ़े चलो! बढ़े चलो!!

बाइबिल हो या कुरान हो,
यो पोप का पुराण हो।
जैन, बौद्ध का सन्देश,
या गुरू ग्रन्थ का बखान

वेद की कसौटी पर कस,
सत्य पर ढले चलों
ओ३म् ध्वज कर में ले,
बढ़े चलो! बढ़े चलो!!

जड़ पूजा, बहूदेववाद,
गुरूडम का बढ़ता भूचाल।
ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' का
घिरे जब भ्रमजाल।।

त्रैत को निर्विवाद मान,
प्रशस्त पंथ गढ़े चलो।
ओ३म् ध्वज कर में चलें
बढ़े चलो! बढ़े चलो!!

- ब्रह्मदेव आर्य, चेवारा, शेखपुरा, बिहार

मानव मात्र के कल्याण का मार्ग -आर्य समाज

प्रकाश आर्य, महू

पिछले अंक का शेष .....

हिन्सा, पाप और घृणास्पद् कार्यों को भी धर्म के रूप में देखा जा रहा है। धर्म के नाम पर सम्प्रदाय के प्रचारकअपनी मजहबी संख्या बढ़ाकर भौगोलिक दृष्टि से एकाधिकार कर संसार पर अपना झण्डा फहराना चाहते हैं। इसे ही वे धर्म का स्थान दे रहे हैं और इसलिए अपनी संख्या बढ़ाने के लिए लोभ, लालच, भय और हिंसा का प्रयोगकर रहे हैं। वे किसी को मनुष्य नहीं, धार्मिक नहीं, अपितु हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन, बौद्ध बनाने पर पूरी शक्ति लगा रहे हैं। ऐसी शक्तियां अपने अहं की तुष्टि के लिए मानवता के साथ उसके पवित्र उद्देश्य के साथ छेड़छाड़ करके समाज को दु:खी कर रहे हैं और साम्प्रदायिकता के नाम पर क्रूर हिंसा को भी धार्मिक मान रहे हैं। धर्म के नाम पर अंधविश्वास व पाखण्ड फैल गया।

यह सब स्थिति देखकर देव दयानन्द ने समाज को धर्म का सही ज्ञान कराने के लिए जीवन में लगभग 3500 ग्रंथों को पढ़ा, सब पर चिन्तन किया, अन्त में उन्होंने ईश्वरीय ज्ञान वेद जो सनातन हैं, उसे मानकर संसार को सत्य मार्ग का दर्शन करवाया। इसका माध्यम राष्ट्र के अनेक गणमान्य श्रेष्ठजनों के आग्रह परआर्य समाज को बनाया। महर्षि ने आर्य समाजकी स्थापना करने में पहले इसे स्थापित करने की सहमति नहीं दर्शायी थी। यह आशंका व्यक्त की थी कि सनातन धर्म अनेक सम्प्रदायों में बट गया है। कई मान्यताएँ अपने को सनातन धर्म से अलग अस्तित्व बना चुकी है। आर्यसमाज को भी समाज सनातन धर्म से अलग संगठन या सम्प्रदाय मान बैठेंगे, तो सनातन धर्मी एक और हिस्से में वह बट जावेगें। परन्तु उपस्थित सभी महानुभावों ने आश्वस्त किया कि आर्य समाज के साथ ऐसा नहीं होगा, यह तो सनातन वैदिक धर्म का रक्षक व प्रचारक ही रहेगा। इसके पश्चात महर्षि ने आर्य समाज की स्थापना 1875 ई. में मुम्बई में की।

संगठनका एक परिचय

किसी भी संस्था, संगठन अथवा समिति के निर्माण के पीछे कोई उद्देश्य होता हैं। ऐसी स्थापना के कई उद्देश्य होते हैं, उनमें सेएक होता है, व्यक्तिगत आत्म संतुष्टि, अपने नाम की लालसा, अपना समाज में प्रभुत्व जमाने के लिए। दूसरा होता है, जन कल्याण की भावना से। इसमें संस्थापक अपना कोई स्वार्थ सामने नहीं रखते, अपने परिवार तक उसे सीमित नहीं रखते। और कुछ में भावनाएं जाति विशेष, देश व परिस्थिति तक भी सीमित नहीं रहती, समस्त विश्व व

मानवमात्र के कल्याण की भावना से ऐसे संगठन की स्थापना की जाती हैं।

जिस उद्देश्य को लेकर स्थापना की, उसका परिचय तथा संस्था के संबंध में पूर्ण जानकारी उसके कार्यों, सिद्धान्तों व नियमों को जानकर ही हो सकती है। आर्य समाज एक पूर्णरूपेण ईश्वर विश्वासी सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना तथा मानव मात्र का कल्याण करने वाला संगठन है। दुर्भाग्य से इसकी सही जानकारी के अभाव में समाज इसे सनातन धर्म से अलग एक सम्प्रदाय या नया मत समझ बैठा। जबकि आर्य समाज किसी भी जाति से, सम्प्रदाय से संबंधित नहीं है और ना ही किसी व्यक्ति विशेष की मान्यता के आधार पर है। इसलिए इसका परिचय करवाने वाले इन 10 नियमों को पढ़कर सत्यता से अवगत होईए और जानिए कि, मानवता का सदा शुभचिन्तक, मित्र, आर्य समाज क्या है?

❖ आर्य समाज का संगठन पूर्ण रूप से ईश्वर विश्वासी संगठन है, समस्त विश्व उस परमपिता के आश्रय में उसकी कृपा से आच्छादित है। समस्त पदार्थ व ज्ञान जो हमें उपलब्ध हैं वे सब उस परमात्मा की कृपा से ही है। ईश्वर की सत्ता को आर्य समाज किस प्रकार मानता है, यह इसका पहला नियम ही इसको स्पष्ट करताक है- **''सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।''**

❖ आर्य समाज उस परमपिता की सत्ता में समस्त विश्व, समस्त ब्रह्माण्ड मानता है। वह ईश्वर सबसे बड़ा, जगत का निर्माता, सबका पालक, रक्षक तथा सदा और प्रत्येक स्थान पर रहता है, वह कभी जन्म नहीं लेता, कभी मरता नहीं है, सदा रहता है, हर पल हमारे साथ रहता है, वह एक ही है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता । ईश्वर की सही पहचान न होने से उसके संबंध में संशय है, वह सदा हमारे पास है उसे पाने के लिए किसी अन्य स्थान पर जाने या उसे पाने हेतु किसी व्यक्ति की आवश्यकता नहीं। समस्त संसार का पालक, रक्षक वही है। ईश्वर एक है, उसके अनेक गुण, कर्म व स्वभाव हैं इसलिए उसे अनेक नाम से पुकारते हैं परन्तु यह एक ही है। जिसमें निम्न गुण पाएं जावें वही ईश्वर हो सकता है। सनातन धर्म अनुसार आर्य समाज अपने दूसरे नियम में ईश्वर को कुछ ऐसा मानता है। **''ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसकी की उपासना करनी योग्य है।''**

❖ जब संसार की रचना हुई, मनुष्य का अस्तित्व हुआ, तभी सबसे पहले वही ज्ञान निष्पक्ष है, पूर्ण है, सबके लिए है। धर्म, कर्म, परिवार, व्यवहार, सामान्य ज्ञान-विज्ञान, अणु-परमाणु, स्वास्थ, संगीत, धरती, आकाश, पाताल का ज्ञान सबकुछ

वर्णित है। यह सब उस परमात्मा की ही श्रता हो सकती है, क्योंकि वही पूर्ण है। आर्य ज उसी परमात्मा के सनातन ज्ञान वेद को ा है। आर्य समाज का तीसरा नियम बताता **''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब र्यों का परम धर्म है।''**

आर्य समाज सत्य का पक्षधर है, धर्म का धार भी सत्य ही है। हमारे जीवन में जब सत्य ाने आ जावे तो उसे तत्काल मान कर असत्य त्यागना मानवीय कर्तव्य मानता है, इसी उद्देश्य आर्य समाज का चौथा नियम है- **''सत्य के ण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा ात रहना चाहिए।''**

कर्म में ईमानदारी- अपने कर्तव्यों का ानदारी से पालन करना, उनकी उपेक्षा न करना सबसे बड़ा मानवीय धर्म है। कभी भी, कहीं , किसी के साथ किए हुए अच्छे कर्म से पुण्य र बुरे कर्मों से पाप मिलता है। स्थान, समय, क्ति के अनुसार कर्म फल बदलता नहीं है। लिए कहीं भी हमें अपने कर्म कोअपने धर्म के लन के साथ करनाचाहिए।ऐसा नहीं कि कुछ मय जब धर्म को मानते हों, उस समय व कार्य र्मिक,फिर उसके बाद अधार्मिक कर्म करने की ं स्वतन्त्रता है। आर्य समाज का पॉचवॉ नियम हता है- **''सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य र असत्य को विचार करके करने चाहिए।''**

❖ समस्त विश्व के सुखी रहने पर ही सर्वत्र सुख हो सकता है। इसीलिए सबका भला करने की, सबकी समृद्धता की प्रार्थना की जाती है। मनुष्य को सुख के लिए स्वस्थ शरीर, स्वच्छ बुद्धि और सामाजिक सोच का भाव होना चाहिए। सनातन धर्म में सारे विश्व को अपना कुटुम्ब माना गया। इसी भावना को आर्य समाज ने माना और न केवल भारत में अपितु विश्व के अनेक देशों में परमात्मा के पवित्र सन्देश को पहुंचाया। एक सीमित क्षेत्र में न रहते हुए आर्य समाज जाति-सम्प्रदाय-स्थान से ऊपर उठकर सबकी उन्नति को महत्व देता है, संसार को अपना मानता है इसी भावना से आर्य समाज का छठा नियम है- **''संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।''**

❖ आर्य समाज की मान्यता का आधार ईश्वरीय ज्ञान वेद है। वेद समस्त प्राणियों को मित्र भाव से देखने का हमारे व्यवहार से सभी दिशाएं हमारे मित्रजनों से भरी हो, यह सन्देश देता है। इसके लिए हमारा सबसे मित्रता का, सहयोग का, उदारता का भाव होना चाहिए। तभी यह संसार संगठित, सुखी और सुरक्षित रह सकता है। इसी भावना से आर्य समाज का सातवाँ नियम कहता है - **''सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना (व्यवहार करना) चाहिए।**

❖ अज्ञान संसार के दु:खों का सबसे पहला और बड़ा कारण है। अज्ञानी व्यक्ति ही गलत मार्ग पर चलकर अपना, अपने परिवार का, समाज का, राष्ट्र का अहित करता है। अज्ञान से उत्पन्न दुर्गुण, व्यक्ति को दुर्व्यसनों से जोड़ता है, सत्याचरण से दूर कर देता है, अन्धविश्वास, पतन व फिर क्लेशों का कारण यही है। इसलिए आर्य समाज चाहता है, सब अज्ञान से दूर हो। ऐसा आर्य समाज के आठवें नियम में दर्शाया है– **''अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।''**

❖ मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसे समाज को भी अपना परिवार मानना चाहिए। दूसरों के दु:ख को बांटना और अपने सुख को भी दूसरों में बांटना हमारा उद्देश्य हो। दूसरों की उन्नति से हम सुख की अनुभूति करें, ऐसी हमारी भावना होनी चाहिए। **''सर्वे भवन्तु सुखिन:''** की हमारी भावना होनी चाहिए। अपने स्वार्थ तक सीमित रहना राक्षसी प्रवृत्ति है, पशुता है, इसलिए आर्य समाज का नवॉ नियम बताता है, **''प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।''**

❖ मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज के अपने कुछ नियम है, विधान है, सभ्यता है, संस्कार हैं, मर्यादा है, कर्तव्य हैं, इन सबका पालन करना सामाजिकता है। मनुष्य मात्र को इन सामाजिक व्यवस्था में रहकर अपनी व समाज की उन्नति करना चाहिए। समाज की मर्यादा का, व्यवस्था का उल्लंघन करना मानवता नहीं पशुता की निशानी है। हॉ व्यक्ति अपने स्वयं के जीवन से संबंधित कर्मो को करने में स्वतन्त्र है। इसी भावना से आर्य समाज दसवाँ नियम कहता है– ***''सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।''***

अन्य कुछ मान्यताएँ :-

❖ **ईश्वर**– ईश्वर का कार्य है सृष्टिकी रचना करना, उसकी रक्षा व पालन करना तथा इसका प्रलय करना और प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्मों के अनुसार फल देना है। ईश्वर का न्याय निष्पक्ष और अटल है। उसके न्याय में कोई कमी या राग-द्वेष नहीं है। समस्त संसार के प्राणियों का रक्षक वही एक परमात्मा है, उसका मुख्य नाम ओ३म् है।

❖ **धर्म**– आर्य समाज की मान्यता है, संसार को सभी मानवों का एक ही धर्म है जो सदा से है, सदा रहेगा, वह ईश्वरने इस सृष्टि की रचना के पश्चात मानवमात्र के लिए दिया था। उसे ही सनातन कहते हैं। व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और विश्व के प्रति अपने कर्तव्यों का पूर्ण निष्ठा से निर्वाह पूर्ण धर्म है। कुछ व्यक्ति या महापुरूष किसी सम्प्रदाय की स्थापना कर सकते हैं, धर्म की नहीं। सम्प्रदाय अनेक हो सकते हैं किन्तु धर्म एक ही है। सम्प्रदाय व्यक्तियों का और, धर्म ईश्वरीय ज्ञान है।

ही संसार को संगठित कर सकता है।

जीवन के श्रेष्ठ कर्म- पंच महायज्ञ प्रत्येक ़ष्य के लिए आर्य समाज पांच श्रेष्ठ कर्मों को ़ने का कहता है यही पंच यज्ञ कहलाते है। ़येक मनुष्य को प्रतिदिन पांच कर्म अवश्य ़ना चाहिए।

पहला है- परमात्मा की प्रार्थना- उपासना, ़की कृपा का गुणगान, जीवन से बुराईयों का ़न्त एवं सद्‌गुणों की सद्‌बुद्धि की प्रार्थना करना, ़की आज्ञा का पालन कर उसकी कृपा हेतु उसे ़न्यवाद देना ब्रह्म यज्ञ है।

दूसरा है- संसार का सर्वोत्तम व पवित्र कार्य ़ज्ञ हवन है, प्रत्येक मनुष्य परमात्मा की सृष्टि को ़कसी न किसी प्रकार से प्रदूषित करता हैं इसलिए ़से प्रतिदिन यज्ञ जो एक वैज्ञानिक प्रक्रिया भी है, ़जससे प्रदूषण दूर होता है उसे करना चाहिए। ़वताओं का मुख अग्नि है, उनकी तृप्ति अग्नि में ़ज्ञ को सुगन्धित पदार्थो तथा मन्त्रों के माध्यम से ़व पूजा करने से होती है। इसलिए आर्य समाज ़ज्ञ का प्रचारक है।

तीसरा है- **पितृयज्ञ**, अपने जीवित ़ता-पिता, वृद्धजनों की सेवा देखरेख करना, ़नकी आज्ञा मानना, उनको प्रसन्न रखना, पितृयज्ञ ़प्रत्येक व्यक्ति को इसको करना चाहिए।

चौथा है- **अतिथि सत्कार**- घर पर आए ़पने हितैषी विद्वान व्यक्ति का अपनी क्षमता के ़नुसार स्वागत सत्कार करके उन्हें तृप्त करना चाहिए। यह अतिथि यज्ञ कहलाता है।

❖ **पांचवा है**- पशु-पक्षियों व अन्य जीवधारियों के प्रति मन में दया व सुरक्षा भाव से उनको उनकी रक्षा करना, खाद्य सामग्री प्रदान करना, गाय, कुत्ता, पक्षी आदि को उनका आहार देना आदि। यह बलिवैश्य देव यज्ञ कहलाता है।

❖ **कर्म**- मनुष्य सुख व दु:ख का भोग अपने इस जन्म या पूर्व जन्मों में किंए गए कर्मों के अनुसार भोगता है। उसके भोगों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। पूजा, पाठ, स्नान, गुरू का आशीर्वाद किसी को भी कर्म के फल से मुक्ति नहीं दिला सकते। यह तो ईश्वर की व्यवस्था है इसमें कोई कमी या गलती नहीं हो सकती इसलिए प्रत्येक को कर्मो का भोग भोगना ही पड़ता है।

ईश्वर जादू टोना जैसा किसी को बिना मेहनत किसी को कुछ नहीं देता, वह हमारे कर्मों के अनुसार ही देता है। उसका मात्र गुणगान करने से, उसको वस्तु भेंट करने से कोई फल नहीं मिल सकता है। ईश्वर निर्मल मन, सत्याचरण और कर्मशील व्यक्तियों की सहायता करता है।

❖ **मानवीय जाति**- आर्य समाज मनुष्य-मनुष्य के मध्य जाति, सम्प्रदाय, भाषा, ऊंच-नींच, गरीब-अमीर, देशी-विदेशी जैसे भेदभावों को नहीं मानता। जाति प्रथा समाज को बांटने वाली एक बुराई है। मनुष्यकी गणना उसके कर्म के अनुसार करनी चाहिए, जन्म से नहीं। परमात्मा ने

मनुष्य-मनुष्य में कोई जाति भेद नहीं किया,समस्त मानव एक ही मनुष्य जाति के हैं।

❖ **मातृभूमि**- वेदों के अनुसार आर्य समाज की मान्यता में भूमि को अपनी माँ का स्थान दिया गया है। आर्य समाज मातृभूमि की रक्षा अपना राष्ट्रीय धर्म मानता है।

❖ **शाकाहार**- आर्य समाज शाकाहारी जीवन को मान्यता देता है। मांसाहार, शराब, नशे को जीवन की बुराई और त्याज्य मानताहै।

❖ **आर्य समाज एक अन्तरराष्ट्रीय संगठन है**- शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय विचारधारा के प्रचार व सेवा के लिए, गुरूकुल, विद्यालय, महाविद्यालय, छात्रावास, अनाथालय, विधवा महिला संवरक्षण केन्द्र, मुद्रणालय, योग प्राणायाम केन्द्र, व्यायामशाला, गौ शाला, औषधालय, सेवालय, वाचनालय, वृद्धाश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तथा आध्यात्म से पूर्ण सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रचार कार्य को करने वाली विश्व की पहली एकल संस्था है।

भारत के अतिरिक्त अमेरिका, आस्ट्रेलिया, हॉलैण्ड, मॉरिशस, सूरीनाम, गय्राना, इंग्लैण्ड, फिजी, साउथ अफ्रिका, सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैण्ड, बर्मा, नेपाल आदि 34 देशों मेंअपनी गतिविधियों संचालित करने वाली संस्था है।

विचार करिए- आज समाज आपसी विवादों में, जाति सम्प्रदाय के झगड़ों में, ईश्वर और धर्म के नाम पर उलझकर सुख-शान्ति खो रहा है। चारों ओर हिंसा, भय, लूट अशान्ति, दुर्घटनाओं ने मानव को घेर लिया है। धर्म के नाम पर बहुत प्रचार हो रहा है, बड़े-बड़े आयोजन होते दिखाई देते हैं किन्तु पाप, अन्याय, भ्रष्टाचार, अन्धविश्वास, पाखण्ड बढ़ रहा है, आदमी अशान्त, अज्ञान भय में जी रहा है मानवीय पतन की सीमाएं बढ़ रही है। ऐसा क्यों? एक ही कारण ईश्वर के ज्ञान से, उसकी व्यवस्था से, उसके सत्य स्वरूप से भटककर आज मानवीय विचारधारा में प्रदूषित विचारों से घिरते जा रही हैं, जहां सत्य का साक्षात्कार नहीं हो पा रहा है। धर्म के नाम पर मनोजरंज आडम्बर दिखावा हो रहा है।

तो आईए, आर्य समाज जो जाति, सम्प्रदाय, मजहब, ऊंच-नींच, गरीब-अमीर और मानवीय ज्ञान के ऊपर है, परमात्मा की सनातन व्यवस्था में विश्वास करता है, एकबार उसके सम्पर्क में आईए? निश्चित रूप से आपको उस ईश्वर का, उसके ज्ञान का, मानवीय आदर्श, शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति का साक्षात्कार होगा और आप सुख शान्ति का जीवन व्यतीत करेंगे।

माता-पिता आचार्य
जो शिक्षा दे धर ध्यान
तब मानव निर्माण का
ऊँचा उड़े विमान

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

SARVADESHIK ARYA PRATINIDHI SABHA

(International Arya League)
Dayanand Bhawan, 3/5, Ramlila Ground, New Delhi- 110002

:..................... दिनांक :..08/06/2015

कार्यालय आदेश

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, मुनीश्वरानन्द भवन, नया टोला, पटना- 4 (पंजीकृत-बिहार राज्य) के प्रधान श्री
द तथा अन्तरंग सदस्यों के मध्य विवाद का कारण उनके द्वारा निरन्तर मनमानी ढंग से आर्य समाजएवं सभा की
ी के विपरीत कार्य किया जाना, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के संज्ञान में आया है। उक्त विवाद का
वेवरण निम्नवत है:-

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा में गैर आर्य समाजियों एवं अपराधिक छवि के लोगों को अन्तरंग
मनोनीत करना।

आर्य कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय, नया टोला, पटना- 4 में 42 लाख रूपये गबन (F.I.R. No.-
2008) के आरोपित, अभियुक्त प्रभारी प्राचार्या को क्लीन चिट देना तथा उसे वैधानिक प्राचार्या हेतु प्रयासरत।

आर्य समाज बांकीपुर, नया टोला में आर्य समाज नियमावली के विपरीत कमेटी बना देना।

दयानन्द विद्यालय, मीठापुर के प्राचार्य पर (F.I.R. No.- 270/14 दिनांक 17/07/2014) दर्ज होने पर
त: सभा द्वारा "कारण बताओ नोटिस" देना चाहिये था किन्तु ऐसा न करके उन्हें उलटे पुरस्कार स्वरूप उन्हें सचिव
त करना।

दयानन्द बालक विद्यालय मीठापुर पर अपने अहंकार व वर्चस्व स्थापित करने की लालशा में विद्यालय को सरकार के
में हस्तान्तरित कर देना।

"हरिहर साह विद्यालय" बाढ़ में कार्यरत प्रधानाध्यापक के रहते हुये एक व्यक्ति को फर्जी प्रधानाध्यापक उसके द्वारा
कर बच्चों के लिये राज्य सरकार द्वारा दी गई साईकिल और पोशाक की राशि की निकासी करवाना एवं श्री रमेशचन्द्र,
र्य, मीठापुर विद्यालय को उक्त विद्यालय के सचिव पद पर बैठाना।

सभा द्वारा संचालित समस्त विद्यालयों में गैर आर्य समाजियों की कमेटी बनाकर उसे अपनी मनमानी ढंग से संचालित
ा।

विद्यालयों में नियुक्ति प्रकरण पर नियमों की अवहेलना खुले आम कर रहे हैं। आर्य समाजियों के योग्य अध्यापक।
पिकाओं को प्राथमिकता न देकर सामाजिक तत्वों के परिवार व सम्बन्धियों की नियुक्ति करना।

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री तक को पूर्णरूप से नजर अंदाज कर व्यक्तिगत हितों के तहत कार्य करना।

मुख्यता उपर्युक्त वर्णित कार्यों को मनमानी ढंग से करते हुये सभा को मुकदमों में उलझा कर रखनाश्री गंगा प्रसादकी
त बन चुकी है, उनके कृत्यों की जानकारी सार्वदेशिक सभा को प्राप्त होते रहने पर उनको निरन्तर आगाह करते हुये सभा
उसकी नियमावली एवं आर्य समाज की नियमावली के अनुरूप चलने का अनुरोध सभा करती रही है, किन्तु खेद है कि
गा प्रसाद अपने निज अहंकार व निज स्वार्थ के वशीभूत होकर सार्वदेशिक सभा की भी परवाह किये बिना अवैधानिक

कार्य उनके द्वारा होते रहे हैं। उपर्युक्त वर्णित तथ्यों के आधार पर सार्वदेशिक सभा, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना के भविष्य एवं आर्य समाज संगठन के हित में हस्तक्षेप करना अनिवार्य समझती है।

अतः बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के समस्त कार्यों तथा इस सभा के अन्तर्गत अन्य समस्त शिक्षण संस्थाओं, प्रान्त की आर्यसमाजों तथा अन्य आर्य संस्थाओं के संचालन के लिये तदर्थ समिति का गठन अवश्यम्भावी हो गया है।

इन परिस्थितियों में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली की नियमावली में प्रदत्त अधिकार से बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा की वर्तमान अन्तरंग-सभा को भंग करके इस सभा के सुचारू एवं सुव्यवस्थित संचालन के लिये निम्न आर्य महानुभावों की एक तदर्थ समिति का गठन करता हूँ।

तदर्थ समिति

प्रधान	श्री भाई विरेन्द्र जी, विधायक, मनेर
उप-प्रधान	श्री ज्ञानेश्वर शर्मा, पटना
उप-प्रधान	श्री संतशरण आर्य, नेमदारगंज
मंत्री	श्री संजय कुमार, नवादा
उपमंत्री	श्री जयदेव आर्य, फतुहा
उपमंत्री	श्री अरूण कुमार, व्यापुर
कोषाध्यक्ष	श्री मुकेश राय, पटना
सदस्य	श्री रविन्द्र नाथ आर्य, बेगुसराय
सदस्य	श्री उमेश शर्मा, पटना
सदस्य	श्री कामता प्रसाद आर्य, आरा
सदस्य	श्री संतोष कुमार, पटना
सदस्य	श्री सुदामा आर्य, गया
सदस्य	श्री राज कुमार, गया
सदस्य	श्री उमेश कुमार गुप्ता, पटना
सदस्य	श्री रघुनाथ प्रसाद, मसौढ़ी

यह तदर्थ समिति तत्काल अपनी अत्यावश्यक बैठक आहूत करके प्रान्त के संचालन को विधिवत अपने हाथ में ले। बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, नया टोला, पटना के नाम से संचालित बैंकों के खातों में लेन-देन के सम्बन्ध में भी यह तदर्थ समिति तत्काल प्रस्ताव पारित कर के सम्बन्धित बैंकों आदि में प्रस्तुत करे तथा उन बैंक खातों को संचालित करे। यह तदर्थ समिति मासिक रिपोर्ट सार्वदेशिक सभा कार्यालय को नियमतः भेजे। यह तदर्थ समिति आगामी छः माह के अन्दर प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के विधिवत निर्वाचन की प्रक्रिया भी प्रारम्भ करने के लिए अधिकृत की जाती है। आगामी निर्वाचन अधोहस्ताक्षरित अथवा उनके द्वारा नियुक्त किसी विशिष्ट महानुभाव की देख रेख में ही सम्पन्न किया जायेगा।

(आनन्द कुमार)
कार्यकारी प्रधान
केप्टन देवरत्न आर्य फैक्शन
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

स्वाध्याय से ध्यान-समाधि-मोक्ष प्राप्ति तक का सफर

लेखक- मनमोहन कु० आर्य

मनुष्य जीवन का लक्ष्य ईश्वर का ाक्षात्कार कर मोक्ष की प्राप्ति है। मोक्ष की ाप्ति के लिए ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानना ावश्यक है। आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय से ईश्वर े स्वरूप का ज्ञान करने के पश्चात् उसका यान व चिन्तन कर स्वात्मा को ईश्वर में मर्पित करना होता है। इस समर्पण की अवस्था ें इन्द्रियों को विषयों से सर्वथा पृथक करके न व आत्मा से ईश्वर के स्वरूप का ध्यान रते हुए उसमें निरन्तरता लायी जाती है। किसी भी अवस्था में मन अन्य किसी सांसारिक विषय को ध्यान में उपस्थित न करके लम्बी अवधि तक यदि वह केवल ईश्वर में ही स्थित रहता है तो यह समाधि की अवस्था होती है। प्रत्येक स्वाध्यायकर्ता व ध्याता को इस समाधि की अवस्था को प्राप्त करना चाहिए। ध्यान व समाधि की प्राप्ति के लिए आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय अपरिहार्य है। यदि हम ईश्वर के सत्य स्वरूप को नहीं जान पाएंगे और जान लेने पर भी ध्यान नहीं करेंगे तो ईश्वर की प्राप्ति अर्थात् ईश्वर का साक्षात्कार सम्भव नहीं है। स्वाध्याय एक प्रकार से समाधि की बुनियाद या आधार-शिला है। जो भी व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। महात्माओं के प्रवचन व उनका प्रशिक्षण भी ईश्वर की प्राप्ति में सहायक होता है यदि वह उपदेशक-गुरू ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानता हो और उसका अपना निजी कोई स्वार्थ न हो। आजकल के गुरूओं में से अनेक भक्तों को अपना चेला या अन्धभक्त बनाने के चक्कर में लगे हैं। उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह भक्तों को सही मार्गदर्शन दे सकेगें। अनेक गुरू तो ऐसे हैं जो स्वयं ही सांसारिक प्रलोभनों के शिकार हैं। वह ईश्वर का आधा अधूरा किताबी थ्योरेटिकल ज्ञान ही रखते हैं। उन्हें न तो प्रायोगिक ज्ञान का अभ्यास है और न इसमें उनकी प्रवृति वा रूचि है। प्रायः ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रयास-रत व्यक्ति ऐसे छद्म गुरूओं के बीच फंस जाता है जिसे न तो ईश्वर की प्राप्ति होती है और न उसका जीवन ही संवर पाता है। अतः स्वयं के प्रयासों से स्वाध्याय करने में ऐसे खतरे काफी कम हैं। यदि हमें पात्र विद्वानों, अपने मित्रों व शुभ चिंतकों से स्वाध्याय की अच्छी पुस्तकों की सही जानकारी मिल जाए और आवश्यकता पड़ने पर हमें किसी योग्य प्रशिक्षक या गुरू, जो एक साधारण गृहस्थी या व्यवसायी भी हो सकता है। उसकी सहायता से हमारा कल्याण भी हो सकता है। इस लेख में हम यह भी बताने का प्रयास करेंगे कि स्वाध्याय के लिए उपयोगी ग्रन्थ कौन से हैं जिनका अध्ययन कर मनुष्य ईश्वर के साक्षात्कार तक पहुंच सकता है।

स्वाध्याय का आरम्भ करने से पूर्व सभी स्वाध्यायप्रेमी अध्येता बन्धुओं को अपना लक्ष्य निर्धारित कर लेना चाहिए। यदि वह ईश्वर व स्वयं की आत्मा को जानना चाहते हैं तो हमें इसके लिए संकल्पपूर्वक ऐसे ग्रन्थों का चयन करना होगा जिसमें इस विषय का सर्वांगपूर्ण ज्ञान हो, भाषा सरल हो व पाठक की समझ में आ जाए। यदि ऐसा हो जाता है तो अध्ययन आरम्भ करने पर ईश्वर व आत्मा के बारे में ज्ञान प्राप्त होना आरम्भ हो जाएगा और जैसे-जैसे स्वाध्याय में प्रगति होगी, पाठक-अध्येता के ज्ञान में भी प्रगति होगी। स्वाध्याय के साथ-साथ अध्येता व स्वाध्यायी को ग्रन्थों में उल्लिखित प्रमुख व महत्वपूर्ण गूढ़ बातों पर ध्यान केन्द्रित कर उसको बार-बार दोहराना चाहिए जिससे वह स्मरण रहें और आगे जहां उनका उल्लेख आए, वह उसे समझ सकें। एक समय का अध्ययन या स्वाध्याय कर लेने के पश्चात् आंखें बंद कर किसी एक आसन में ध्यान की अवस्था में बैठ जाना चाहिए और पूर्व स्वाध्याय किए विषय एवं ईश्वर व आत्मा के स्वरूप को स्मरण कर उस पर अपना ध्यान केन्द्रित कर इन सबको और गहराई में उतर कर समझने की चेष्टा करनी चाहिए। जैसे-जैसे स्वाध्याय व विचार एवं चिन्तन बढ़ता जाएगा, साधक का स्तर ऊंचा होता जाएगा। ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान व साक्षात्कार होने का काल कम होता जाएगा और साधक को एक लाभ यह भी होगा कि स्वाध्याय व साधना में रूचि में वृद्धि होगी। अब ऐसी स्थिति आ सकती है कि जब बिना स्वाध्याय व चिन्तन के उसे भोजन और निद्रा भी अच्छी न लगे। यदि इस प्रकार की साधक की स्थिति होती है तो यह उसके लक्ष्य के निकट पहुंचने का प्रतीक है। इस अवस्था में पहुंचने पर या इससे पहले ही उसे अपने पुराने मित्र जिनकी स्वाध्याय, अध्यात्म व ध्यान साधना में विशेष रूचि नहीं होती, अच्छे नहीं लगते क्योंकि वह अनुभव करता है कि उनकी उपस्थिति और उनकी फिजूल की बातों से उसके स्वाध्याय व ध्यान में बाधा होती है, लाभ कोई नहीं परन्तु हानि होती है। अतः कुछ समय बाद उन पुराने साथियों से उसका सम्बन्ध कमजोर होने लगता है। इधर उसकी अध्यात्म में प्रगति होती है और उधर पुराने साथियों से उसका सम्बन्ध लगभग समाप्त हो जाता है जिसका कारण साथियों को स्वाध्याय व ध्यान साधना अच्छी नहीं लगती और इस साधक को स्वाध्याय व ध्यान को छोड़ने में अपनी बहुत बड़ी हानि का अनुभव होता है।

स्वाध्याय से ध्यान, समाधि व ईश्वर की प्राप्ति आदि ऐसे-ऐसे लाभ हैं जो अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकते। उदाहरण के रूप में हम ध्यान से समाधि के विषय में विभिन्न योगियों, विद्वानों व संन्यासियों के अनुभवों के अध्ययन करते हैं। सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय से यह भी ज्ञान होता है कि यदि हम एक व्यक्ति को ही गुरू बनायेंगे और अन्य विद्वानों व योगियों

आदि पात्रों की उपेक्षा करेगें तो ऐसा करके हम बहुत सारे लाभों व ज्ञान से वंचित हो जाएंगे। अतः हमारा मानना है कि कभी भी किसी अध्येता, उपासक व योगी को अपने मन से यह विचार निकाल देना चाहिए कि वह अपने किसी एक गुरू के अतिरिक्त अन्य ऋषियों, योगियों या विद्वानों के ग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं करेगा। हम तो यहां तक कहेंगे कि यदि किसी ऐसे व्यक्ति ने कुछ लिखा है जिसे सामान्यतः सुधीजन अस्वीकार करते हैं तो उसे भी पढ़ लेने और उसको अस्वीकार करने वाले विद्वानों की आपत्तियों को देखकर समझ लेने में लाभ ही है, हानि कुछ नहीं। इससे हमारा पूर्व अध्ययन किया हुआ ज्ञान स्थिर व स्थायी होता है। हां, इतना आवश्यक है कि व्यक्ति जितना अध्ययन करता है उससे अधिक उसे योगाभ्यास कर ध्यान व चिन्तन करना चाहिए तो उसे बहुत अधिक लाभ होने की सम्भावना है। यदि केवल पढ़ता ही पढ़ता है, यह बुरा तो नहीं, परन्तु ध्यान व चिन्तन में समय न लगाने से जो बहुत अधिक लाभ हो सकता है, उससे वह वंचित हो जाता है। अतः प्रत्येक स्वाध्यायशील व्यक्ति को स्वाध्याय के साथ-साथ साधना अर्थात् ध्यान व चिन्तन अवश्य करना चाहिए।

अब तक हमने स्वाध्याय के विषय में कुछ जाना है। स्वाध्याय से ईश्वर व स्वयं अर्थात् अपनी आत्मा का स्वरूप व ईश्वर की प्राप्ति के उपाय जान लेने के पश्चात् ध्यान व समाधि के विषय में भी जानना होता है जो स्वाध्याय से ही जाना जाता है। ध्यान करने के लिए और उसकी प्राप्ति के लिए आवश्यक है। धारणा को स्थिर करके ध्यान करना होता है। ध्यान क्या है? ध्यान, ध्येय विषय अर्थात् ईश्वर, जिसे चित्त में धारण किया हुआ है, उसकी अर्थात् ईश्वर की वृत्ति निरन्तर उदय होती रहे, उसमें विषयान्तर की वृति का नितान्त भी उदय न हो, विषयान्तर से सर्वथा अछूता रहे, ध्यान की अवस्था में एकमात्र ध्यये ही चित्त का आधार बना रहे, यह 'ध्यान' का स्वरूप है। ध्यान में जब ध्याता इतना मग्न व तल्लीन हो जाता है कि उसे अपना अर्थात् वह ध्यान कर रहा है, इसका किंचित भी ज्ञान न रहे और केवल ध्येय ही उस स्थिति में उसके सम्मुख उपस्थित या भासमान् हो, उसे समाधि कहा जाता है। इसे यह भी कह सकते हैं कि ध्यान की निरन्तरता जिसमें ध्याता को अपना ज्ञान न रहे और ध्यये का ही आभास निरन्तर बना रहे, यह समाधि की अवस्था है। वह समाधि की अवस्था में ही आत्म साक्षात्कार एवं ईश्वर का साक्षात्कार होता है। ईश्वर का साक्षात्कार क्या है, वह जीवन के उद्देश्य की पूर्ति का होना है। मानव जीवन की सफलता है जन्म-मरण रूपी दुःखों की सर्वथा निवृति व मुक्ति की प्राप्ति है। इस मुक्ति या मोक्ष की

अवस्था की कालवधि 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष = 31,10,40,00,00,00,000 वर्ष है। इस सुदीर्घ अवधि तक मुक्ति हुआ जीवात्मा पूर्ण आनन्द को प्राप्त रहता है। समाधि अवस्था में ईश्वर अपने स्वरूप का जीवात्मा को प्रकाश करता है। इस अवस्था में ईश्वर भीग रहा हो या झरने की धारा में नीचे बैठा हुआ हो अर्थात् झरने के जल से सर्वांगशीतलता का अनुभव हो रहा हो। मुण्डक उपनिषद् के 40वें श्लोक- 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशाय:। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।'' में कहा गया कि ईश्वर का साक्षात्कार अथवा अपने आन्तरिक ज्ञान-चक्षुओं से दर्शन हो जाने पर हृदय की सभी गांठें व ग्रन्थियां खुल जाती हैं, सभी संशय मिट जाते हैं, दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं और तब उस परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उसमें वह जीवात्मा निवास करता है। ईश्वर के साक्षात्कार के बाद जब मृत्यु आती है तब जीव जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर मुक्ति में चला जाता है। मुक्ति का लाभ व सुख ऐसा है जिसकी उपमा में कोई सांसारिक सुख या पदार्थ नहीं है। हां, यह तो कह सकते हैं कि सांसारिक सुख मुक्ति के सुख की तुलना में हेय ही है। यह मुक्ति विवेकशील कुछ ही लोगों को प्राप्त होती है। हम यह अनुमान करते हैं कि अतीत में यह मुक्ति योगेश्वर कृष्ण, मर्यादापुरूषोत्तम राम, महर्षि दयानन्द सरस्वती, इनसे पूर्व हुए सन्त, ऋषि-महर्षि व योगियों को प्राप्त हुई होगी। प्रत्येक समझदार वा ज्ञानी मनुष्य को वेद मार्ग पर चल कर मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

स्वाध्याय के लिए उपयोगी ग्रन्थों का उल्लेख भी हम कर देते हैं। इनके अतिरिक्त भी बहुत से ग्रन्थ हैं जो पढ़ सकते हैं। इसका चयन व निर्णय प्रत्येक व्यक्ति अपने विवेक से कर सकता है। सत्यार्थ प्रकाश, आर्याभिविनय, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, योगदर्शन पर अनेक आर्य विद्वानों के भाष्य, प्रमुख 11 उपनिषद्, 6 योग-सांख्य-वेदान्त-वैशेषिक-न्याय-मीमांसा दर्शन और इन पर आर्य विद्वानों यथा पं. उदयवीर जी शास्त्री आदि के भाष्य, मनुस्मृति, चारों वेदों पर महर्षि दयानन्द एवं आर्य विद्वानों के भाष्य आदि। इनके अतिरिक्त महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र जो स्वामी सत्यानन्द, पं. लेखराम व देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा लिखित है, उपयोगी हैं। हमने यहां न्यूनतम् ग्रन्थों का उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थ हो सकते हैं जिनका स्वाध्याय उपयोगी हो सकता है। इसका निर्णय प्रत्येक स्वाध्यायशील व्यक्ति स्वमति से कर सकता है।

वैदिक धर्म की जय।
महर्षि दयानन्द की जय।

"ओ३म्"

" महर्षि के मानव-मात्र पर चार विशेष उपकार"

लेखक- खुशहाल चन्द्र आर्य, कोलकात्ता

वैसे तो महर्षि दयानन्द के मानव-मात्र पर सैंकड़ों नहीं सहस्त्रों उपकार है, जिनकी गिनती करनी असम्भव है। हम लेख में केवल चार उपकारों का संक्षिप्त वर्णन करते है, जिनको हम लोगों ने लगभग पाँच हजार वर्षों से प्रायः भुला दिया था। जो इसी भाँति हैं :-

1. सब का एक धर्म "वैदिक धर्म" ही है:- सृष्टि के आरम्भ से लेकर महाभारत तक एक ही धर्म "वैदिक धर्म" को ही विश्व के सभी लोग मानते रहे। लगभग पाँच हजार वर्ष पहले महाभारत की भीषण युद्ध हुआ विश्व भर के सभी राजा, महाराजा, योद्धा, विद्वान व आचार्य युद्ध में काम आ गये। इस स्थिति में अविद्वान, स्थायी लोग ही विद्वान समझे जाने लगे और उन स्वार्थी लोगों ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए वैदिक धर्म के स्थान पर अनेक मत-मतान्तर प्रचलित कर दिये जिससे लोग धर्म भ्रमित हो गये और विश्व में अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्ड का ही राज्य स्थापित हो गया और वैदिक धर्म प्रायः लुप्त हो गया और लोगों ने अन्धविश्वास, पाखण्ड रूपी अधर्म को ही धर्म मान लिया। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द अपने जीवन में कठोर तपस्या करके अनेक दुःखों व कष्टों को सह कर अपने सद्गुरू स्वामी बिरजानन्द जी की गोद में लगभग तीन साल बैठकर महाभाष्य व अष्टाधायी का गहन अध्ययन करके वेदों के सही अर्थ निकालकर विश्व में वेदों का पुनः प्रकाश किया, और करीब पाँच हजार वर्षों से जो लोग वैदिक धर्म को भूल गये थे और उनके मत-मतान्तरों में फँस गये थे, उनको पुनः वैदिक धर्म में लाकर उनके जीवन को सफल बनाने के लिए एवं उनके जीवन में सुख शान्ति लाने के लिए जो वैदिक धर्म पर चलने से ही सम्भव है, उनको वैदिक धर्म पर चलने की प्रेरणा दी और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया जो जीव का अन्तिम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति के लिए ईश्वर, जीव को मनुष्य योनि में भेजता है।

महर्षि दयानन्द के आने से पहले, लोग उनके मत-मतान्तरों में बटे हुए थे, उनके ग्रन्थ भी अलग-अलग थे जो सभी मनुष्यकृत थे। मनुष्य एक अल्पज्ञ प्राणी होने से उनके बनाये ग्रन्थों में भी अलगाव वाद का होना आवश्यक है। परन्तु महर्षि ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान तथा सब सत्य विद्याओं की पुस्तक बतला कर विश्व को यह बतलाया कि मानव-मात्र का एक ही धर्म है "वैदिक धर्म" और एक ही धर्मग्रन्थ 'वेद' है। इन्हीं को मानने से विश्व का कल्याण

है अन्यथा परस्पर के भेद-भाव रहना निश्चित है।

2. सब का एक ही उपास्य देव "ओ३म्" है :- महाभारत युद्ध से पहले एक ही धर्म "वैदिक धर्म" था और एक ही उपास्य देव "ओ३म्" था। महाभारत के बाद अज्ञानी, स्वार्मी लोगों ने जहाँ उनके मत-मतान्तर चला दिये, वहीं उनके उपास्य देव भी चला दिये। उनके मतों में शैव, वैष्णव व शाक्त मुख्य थे। शैवो ने शिव (महादेव) को, वैष्णवों ने विष्णु को और शाक्तों ने दुर्गा, काली, भौरव आदि को अपना उपास्य देव मानना आरम्भ कर दिया। ब्रह्मा को सृष्टिकर्त्ता, विष्णु को पालनकर्त्ता और शिव को संहारकर्त्ता बतलाकर तीनों को उपास्य देव मान लिया। श्री राम और श्री कृष्णा को विष्णु का अवतार बतलाकर ईश्वर के रूप में ही उपास्य देव मानना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार अनेक देवी-देवताओं की उपासना होनी आरम्भ हो गई। महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" में यह लिखकर भ्रम समाप्त कर दिया कि इन सभी देवताओं के नाम "ओ३म्" के ही गुणों व कर्मों के नाम हैं, इसलिए एक "ओ३म्" की उपासना करने से ही सभी देवताओं की उपासना हो जाती है। "ओ३म्" ही सृष्टि को उत्पन्न करने वाला है, वही पालन करने वाला है और वही संहार करने वाला भी है इसलिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों ही देव "ओ३म्" में ही समाहित हो जाते हैं। सत्यार्थ प्रकाश में "ओ३म्" के एक सौ नामों का वर्णन है। इसलिए महर्षि ने बताया कि किसी अन्य देवता की उपसना न करके केवल "ओ३म्" की ही उपासना उसके गुणों का वर्णन करते हुए, उसके गुणों को अपने जीवन में धारण करने का संकल्प करते हुए संध्या द्वारा करनी चाहिए। यह बतला कर महर्षि ने सभी मनुष्यों को जोड़ने का काम करके मनुष्य-मात्र पर बड़ा उपकार किया है।

3. एक ही नाम "आर्य" था :- सृष्टि के आरम्भ में जितने भी मनुष्य थे, वेद ने उनको "आर्य" नाम से सम्बोधित किया है और वेदों में लिखा है कि " अहं भूमिम् अददाम आर्याय", इसका अर्थ है कि मैं ईश्वर, धर्मयुक्त गुण, कर्म, स्वभाव वालों के लिए पृथ्वी के राज्य को देता हूँ यानि धर्मयुक्त गुण, कर्म, स्वभाव वाले आर्य ही इस पृथ्वी का आनन्द ले सकते हैं और वेदानुकूल चलते हुए अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकते है। सृष्टि के आरम्भ में केवल दो किस्म के ही मनुष्य थे। गुण, कर्म, स्वभाव से अच्छे व्यक्तियों को "आर्य" कहा जाता था और इससे विपरीत खराब चाल, चलन व व्यवहार वालों को अनार्य कहा जाता था। अनाड़ी शब्द अनार्य का ही विकृत रूप है। महाभारत तक यही प्रथा चलती रही। रामायण, महाभारत की

फल्मों में हमने देखा है कि सीता ने श्री राम को दैव " आर्य पुत्र" और द्रौपदी ने अर्जुन को दैव "आर्य पुत्र" के नाम से सम्बोधित किया ।

महाभारत तक हमारा नाम "आर्यवर्त्त" था। इसके बाद मुसलमानों ने सिन्धु नदी का अपभ्रंश करके हमें "हिन्दू" और हमारे देश को हिन्दुस्तान कहना आरम्भ कर दिया। अंग्रेजों के आने पर हमें "इण्डियन" और हमारे देश को " इण्डिया" कहना आरम्भ कर दिया। महर्षि दयानन्द का हमारे ऊपर बड़ा ऋण है कि उन्होंने हमारा प्राचीन नाम "आर्य" हमें याद दिला दिया। वेद प्रचार करने तथा परोपकारी कार्यों को करने के लिए महर्षि ने "आर्य समाज" की स्थापना सन् 1875 में मुम्बई में की, इससे विश्व भर में वेद प्रचार तथा मानव कल्याण के कार्य काफी मात्रा में हो रहे हैं। यह भी महर्षि का हमारे ऊपर बहुत बड़ा उपकार है।

4. अभिवादन करने का एक ही तरीका "नमस्ते" है :- वैदिक धर्म का प्रचार जब तक रहा, तब तक सभी लोग परस्पर मिलने पर एक ही अभिवादन "नमस्ते" करते थे। बाद में वैदिक धर्म प्राय: लुप्त होने से अज्ञानता वश श्री राम और श्री कृष्ण को स्वार्थी लोगों ने इनकों ईश्वर का अवतार बताना आरम्भ कर दिया, तब से जय श्री राम, जय श्री कृष्णा, राम-राम आदि अभिवादन के रूप में कहना आरम्भ कर दिया। मुस्लमान भाई "सलाम वाले कुम" "वाले कुम सलाम" अभिवादन में कहते हैं। अंग्रेज भाई "गुड मॉरनिंग" "गुड नाईट" समय के अनुसार कह कर अभिवादन करते है, जो अपने ह्रदय का प्रेम-प्रदर्शन करने का उपयुक्त तरीका नहीं जान पड़ता है। महर्षि ने वेदों के आधार पर वही प्राचीन अभिवादन शब्द "नमस्ते" को उपयुक्त बताया और आर्य समाजियों को परस्पर मिलने पर "नमस्ते" का प्रयोग करने का आग्रह किया। आर्य जगत् में एक वेदों के प्रकाण्ड विद्वान अयोध्या प्रसाद वैदिक रिसर्च रिस्कोलर हुए है, जिनका अधिक जीवन कलकत्ता में ही बीता था। उनको आर्य समाज की तरफ से सन् 1933 में शिकांगों में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन में भेजा गया था। वहां चर्चा का विषय अभिवादन के लिए उपयुक्त शब्द क्या होना चाहिए, यही था। सभी देश वालों ने अपने-अपने अभिवादन शब्द के सम्बन्ध में बताया। अन्त में पं० अयोध्या प्रसाद जी ने "नमस्ते" की इतनी सुन्दर व स्टीक व्याख्या की, जिसको सभी देश वालों ने "नमस्ते" को ही अभिवादन के रूप में सब से अधिक उपयुक्त समझा और इसी को सभी ने स्वीकार कर लिया। तभी से विश्व भर में "नमस्ते" का ही सब से अधिक प्रचलन है। महर्षि का अभिवादन में "नमस्ते" का पुन: प्रचलन करवाना, मनुष्य-मात्र पर एक बहुत बड़ा उपकार है।

कड़वा सच्च

आर्य जगत् में आनन्द कुमार आर्य एक चिर-परिचित नाम है। जो वर्तमान में सार्वदेशिक सभा नई दिल्ली (कैप्टन ग्रुप) के कार्यकारी प्रधान हैं। जब कैप्टन देव रत्न आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान बने तब वे रोगग्रस्त ज्यादारहने लगे। उसी समय उन्होंने आनन्द कुमार आर्य को आर्य समाजके संगठन को मजबूत करने की जिम्मेवारी सौपी, उस उत्तरदायित्व को आनन्द जी ने कुशलता पूर्वक निभाया, पूरे भारत का भ्रमण कर प्रांतीय सभाओं को एक करने का भागीरथ प्रयास कर आर्यो का मनोबल बढ़ाया। जहाँ कहीं भी कोई विवाद होता वहाँ आनन्द बाबु जाते और उस विवाद का निपटारा अपने नीति से करते थे। उस समय लगने लगा था कि अब आर्य समाज संगठन काफी मजबूत हो रहा है। गुटवन्दियाँ समाप्त हो रही है और राष्ट्र के समस्त आर्य एक मंच पर आ रहे हैं।

परन्तु दुर्भाग्य से चन्द स्वार्थी, पदलोलुप, अहंकारी लौगों ने उस गति को अवरूद्ध कर समाज एवं सभाओं को विघटन के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। एक उदाहरण मैं प्रस्तुत करना चाहता हूँ, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के पूर्व प्रधान श्री गंगा प्रसाद जी जब अंतरंग सभा में गैर आर्य समाजियों को ले आये, सभा द्वारा संचालित विद्यालयों में असामाजिक तत्वों की टीम तैयार कर दी तब बिहार के प्रबुद्ध आर्यो एवं अंतरंग सभा के सदस्यों ने इस कुकृत्य का विरोध किया, तब उन्हें धमकी दिया जाने लगा। श्री गंगा प्रसाद जी की यह शिकायत जब सार्वदेशिकसभा (कैप्टन ग्रुप) को दी गई, तो वहाँ के वरिष्ट पदाधिकारियों ने हाथ खड़े कर दिये और कहने लगे हम गंगा बाबु के खिलाफ कुछ नहीं कर सकते। हमने यहाँ तक कहा कि आप बिहार चलकर आर्य समाजियों को सुनें और सभा एवं समाज को बचाने का प्रयास करें।

परन्तु दु:ख के साथ कहना पड़ रहा कि हमारे फरियाद को किसी ने नहीं सुना बल्कि इस पर राजनीति करना प्रारम्भ कर दिया, अन्तत: जब कार्यकारी प्रधान श्री आनन्द कुमार आर्य जी को यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने तत्काल बिहार के आर्य समाजियों से बात की, भावना का सम्मान उन्होंने करते हुए सभा और आर्य समाज की सुरक्षा हेतु बिहार में 8 जून 2015 को नई तदर्थ कमेटी का गठन कर गंगा प्रसाद की कमेटी, को निरस्त कर दिया, जिसके कारण बिहार के आर्य समाजियों का स्वाभीमान बचा और आज समस्त बिहार के आर्य समाजी एक मंच पर खड़े हैं।

यह सुन्दर अवसर यदि किसी ने दिया तो वह है आनन्द कुमार आर्य। जो सब कुछ जान कर भी सत्य को साथ देने में असमर्थता प्रकट कर दी, क्या ऐसे लोग सार्वदेशिक के अधिकारी रहने के योग्य है? महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है, जिस सभा में अधर्म से घायल होकर धर्म उपस्थित होता है। जो इसका शल्य अर्थात् तीरवत् धर्म के कलंक, को निकालना और अधर्म का छेदन नहीं करते, धर्मी को मान अधर्मी को दण्ड नहीं मिलता उस सभा में जितने सभासद हैं, वे सब घायल के समान समझा जाता है। आगे ऋषि लिखते हैं ''जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य, सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है उस सभा में सब मृतक के समान है। ऋषि का यह विचार समस्त सभा के अधिकारी गण ध्यान देकर, स्वीकार करें चापलुसी और चाटुकारिता बन्द करें इसी में सभी की भलाई है। जब शिरोमणी सभा के अधिकारी ही पंगु हो जाय तो आर्य समाजों की रक्षा कौन करेगा? केवल यह आरोप लगाना कि आनन्द कुमार को हमने निकाल दिया है, यह सरासर बेइमानी है। आप समाधान नहीं करते, जो समाधान करते उनके निश्कासन का विगुल बजाते यह कैसी नादानी है।

मैं तो कहना चाहूँगा कि सत्य के प्रहरी ही अगर सत्य का गला घोटेंगे, सत्य को सत्य नहीं कहेंगे तों क्या गैर आर्य समाजियों से ऐसी उम्मीद करें, इस पर समस्त आर्य जन विचार करे।

उपनिषद् उपदेश रत्नावली

प्रार्थना

आचार्य हरिदेव

सहानाववतु, सहनौभुक्त, सहवीर्य करवावहै ।
तेजस्विनावधी तमस्तु, मा विद्वविषामहै

हमारा ज्ञान अथवा वह परमात्मा, री रक्षा करे, हमारा पालन-पोषण करने ना हो, हमें साहस प्रदान करे, हमें तेजस्वी , हम दोनों आचार्य और शिष्य को वक्ता र श्रोता को द्वेष रहित करे। इति

लौकिक और पारलौकिक उन्नति के ए तप-शारीरिक साधना, ब्रह्मचर्य, मानसिक धना और श्रद्धा आत्मिक साधना इन तीनों की में प्राप्ति हो।

थम उपदेश- कल्पना करो कि एक बहुत च्छा युवक है जो खूब पढ़ा-लिखा, शासन रने वाला, दृढ़ और बलवान है, पुनः उसे न-धान्य से पूर्ण सम्पर्ण पृथ्वी मिल जाए, उसे आनन्द होगा वह एक मनुष्य आनन्द है।

युवास्यात् साधु युवाध्यापकः
आशिष्ठो द्रविष्ठो बलिश्ठस्तस्येयं पृथ्वी
सर्वा वित्तस्य
पूर्णास्यात् स एवं मानुषानन्दः॥

इस प्रकार के नौ मानुष आनन्दों से एक न्धर्व आनन्द बनता है। श्रौत्रिय तथा कामना सक्त व्यक्ति को ऐसा आनन्द प्राप्त होता है। सौ मनुष्य गान्धर्वों, का जो एक आनन्द है वह चिरकाल तक विजय पाने वाले मित्रों का आनन्द है।

जो लोक लोकान्तरों पर विजय पाने वाले सौ पितरों का आनन्द है वह अजानज देवों का जन्म से ही दिव्य गुण वाले व्यक्तियों का आनन्द है। जो सौ अजानज देवों का एक आनन्द है वहकर्म से देवत्व प्राप्त किए हुए कर्म देवताओं का एक आनन्द है, ऐसे व्यक्ति कर्म से दिव्य गुणों को प्राप्त करते हैं।

सौ कर्म देवों का जो आनन्द है वह इन्द्र का आनन्द है।

सौ इन्द्रों के बराबर बृहस्पति का एक आनन्द है। सौ बृहस्पतियों के बराबर प्रजापति का एक आनन्द है सौ प्रजापतियों के आनन्द के बराबर ब्रह्म का एक आनन्द है। शिरोमणि तथा कामनाओं के रहित व्यक्ति को वह ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है।

द्वितीय उपदेश- घोड़े के चार नाम हैं। हय,बाजी, अर्वा तथा अश्व। ऐसा समझ कर जो

इस सृष्टि रूपी घोड़े पर सवार होते हैं, बैठते हैं। इसे त्यागना है यह समझकर इसका उपयोग करते हैं वह 'देव' कहलाते हैं।

यह सृष्टि बाजी है वाज वाली, अन्न वाली है, भोग्य है, जो इस सृष्टि रूपी घोड़े पर इसे बाजी समझ कर बैठते हैं, संसार भोग के लिए है ऐसा विचार कर इसका भोग करते हैं ऐसा विचार कर इसका भोग करते हैं वे विलासी लोग गन्धर्व कहलाते हैं।

यह सृष्टि बाजी है वाज वाली अन्न वाली है, भोग्य है, जो इस सृष्ट रूपी घोड़े पर इसे बाजी समझ कर बैठते हैं, संसार भोग के लिए है ऐसा विचारकर इसका भोग करते हैं वे विलासी लोग गन्धर्व कहलाते हैं।

यह सृष्टि अर्वा है, अर्व अर्थात् वध का हिंसा का स्थान है। हिंसा से ही यहाँ काम चलता है। ऐसा समझ कर इस सृष्टि रूपी घोड़े पर सवार होते हैं। संसार में संहार द्वारा ही अपनी जीवन यात्रा करते हैं वह ''असुर' कहलाते हैं।

यह सृष्टि अश्व है। अश् अर्थात् खाने-पीने का स्थान है, भोजन मिल जाने की जगह है। पेट भर जाए जीवन यात्रा का निर्वाह हो जाए इतने मात्र से सन्तुष्ट रहते हैं, जो इस सृष्टि रूपी घोड़े को अश्व समझ कर इस पर बैठते हैं,वह मनुष्य अथवा साधारण लोग कहे जातेहैं।

हयो भूत्वा देवानवहत्, वाजी गन्धर्वान्, अर्वा सुरान्अश्वोमनुष्यान्।

वृहदारण्यक् । 3 । अ. 1 वा. 1 श्लोक 2।

तृतीय उपदेश-वेदों पर आचरण करने से सार रूप पाँच अमृतों की प्राप्ति होती हैं। देव लोग खाने-पीने से तृप्त नहीं होते अपितु इन पाँच अमृतों का पान करते हैं। जो इन पाँच अमृतों का पान करते हैं। जो इन पाँच का पान नहीं करते वह किसी गिनती में नहीं। वे अमृत हैं, **यश, तेज, ऐश्वर्य, शक्ति तथा अन्न-**

जो प्रथम अमृत अर्थात् **यश का पान करते हैं** वह वसु कहलाते हैं और अग्निमुख, होते हैं।

जो द्वितीय अमृत अर्थात् **तेज का पान करते हैं** वह रुद्र हैं और इन्द्रमुख होते हैं।

जो तृतीय अमृत अर्थात् **ऐश्वर्य का पान करते हैं** वह आदित्य वरुणाभिमुख होते हैं।

जो चतुर्थ अमृत अर्थात् **शक्ति का पान करते हैं** वह मरुत हैं और सोममुख होते हैं।

जो पंचम अमृत अर्थात् **अन्न का पान करते हैं** वह साध्य और ब्रह्म मुख होते हैं।

अग्नि संसार के भौतिक पदार्थों का प्रतिनिधि है। और ब्रह्म आध्यात्मिक जगत की अग्नि है और आध्यात्मिक संसार का प्रतिनिधि है। अग्नि सुख वह है जिसका सुख संसार के भोगों की ओर हो। ब्रह्म सुख वह है जिसका

ंसार की ओर नहीं अपितु ब्रह्म मुख पर समाप्त होता है। प्रवृत्ति से जीवन का । और निवृत्ति में इसकी समाप्ति हो यही मार्ग है। (छान्दोग्योपनिषद्)

: **उपदेश- प्रभु से दूर-** जो व्यक्ति र से दूर नहीं हुआ, जो अशान्त है। जो तर्क ई से उलझा है, जो चंचल वित्त वाला है। उस प्रभु का प्राप्त नहीं कर सकता, वह प्रभु वल प्रज्ञान द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता

विरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
ाशान्त मनसोवापि प्रज्ञानेनमाप्नुयात्॥
(कठ उपनिषद्)

के मोह से मूढ़ प्रमादी, विवेकरहित, मनुष्य परलोक की बात पसन्द नहीं आती। यही क है परलोक कुछ नहीं ऐसा मानने वाला -बार मृत्यु के चक्कर में आता है।

न साम्प्रायः प्रतिभाति बाल प्रमाद्यंतं
वित्तमोहेन मूढ़म्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनर्पुनर्वशमापद्यते में।
कठोपनिषद

म उपदेश- ब्रह्मः- निश्चय से यह ओ३म् ाशन न होने वाला ब्रह्म है। यही सर्वश्रेष्ठ है। अविनाशी ब्रह्म को जो जान लेता है, निश्चय जिस वस्तु की वह कामना करता है उसे प्राप्त हो जाती है। इस ओ३म् का आश्रय सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि है। इस आश्रय को जान कर जीवन परमानन्द युक्त लोक को- अवस्था को प्राप्त करता है। -(कठोपनिषद्)

एतदेवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरम परम,
एतदेवाक्षरें ज्ञात्वा योयदिच्छति तस्य तत्।
एतदालम्बन श्रेष्छमेतदालम्बनं परम,
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्म लोके महीयते।

षष्ठ उपदेश- यह आत्मा ज्ञानी है। न यह उत्पन्न होता और न मरता है। न यह किसी उपादान से उत्पन्न होता है और न यह किसी का उपादान कारण है। यह आत्मा अजन्मा, नित्य अनादि और सनातन है, शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होता।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुत्श्चिन्
न व भ्रूव कश्चित्
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते
हन्यमाने शरीरे॥ (कठोपनिषद्)

सप्तम उपदेश- जीवात्माः- जीवात्मा हंस है, वसु है, होता है, अतिथि है। हंस जिस प्रकार शुद्ध पवित्र स्थान में रहता है। वैसे ही हंस रूपी जीव शुद्ध पवित्र ब्रह्म में वास करता है। वसु जैसे अन्तरिक्ष में वास करते हैं वैसे वसु रूपी जीव हृदय के अन्तरिक्ष में वास करता है, होता जैसे वेदी के सामने बैठ कर अग्निहोत्र करता है। वैसे होता रूपी जीव तीनों नाचिकेत अग्नियों का

चयन करता है, माता,पिता,गुरु की सेवा करता है। वसु जैसे अन्तरिक्ष में वास करते हैं वैसे वसुरूपी जीव हृदय के अन्तरिक्ष में वास करते हैं वैसे वसु रूपी जीव हृदय के अन्तरिक्ष में वास करता है, होता जैसे वेदी के सामने बैठ कर अग्निहोत्र करता है। वैसे होता रूपी जीव तीनों नाचिकेत अग्नियों का चयन करता है, माता, पिता, गुरु की सेवा करता है। जैसे अतिथि किसी की कुटिया को अपना समझ कर नहीं बैठ जाता वैसे ही अतिथि रूपी जीव इस नर तन को सदा के लिए अपना घर समझ कर नहीं बैठ जाता वैसे ही अतिथि रूपी जीव इस नर तन को सदा के लिए अपना घर समझ कर नहीं बैठा रहता।

यह जीवात्मा नर देह में वासकरता है। नर से अच्छे वर देह में वास करता है। उससे अच्छे ऋत देह में वास करता है। उससे उत्तम व्योम देह में वास करता है। जीव जन्तु जल में उत्पन्न होते हैं, पर्वतों पर उत्पन्न होते हैं। जीव क्रमशः उत्तरोत्तर अवस्था को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार जीवात्मा नर देहसे वर देह, वर देह से ऋत देह और ऋत देह से व्योम देह को प्राप्त होता है ये इसका विकास क्रम हैं यही विशाल नियम सम्पूर्ण संसार में काम करता है। यथा-

हंस शुचिसद् वसुरन्तरिक्षद्धोता वेदिषदतिथि दुरोण सत्।
नृषद्वरसदृत सद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं वृहत्॥ (कठोपनिषद्)

हे नचिकेता तुझे महान सनातन सत्य को बतला रहा हूँ कि मरने के बाद जीवात्मा की क्या गति होती है। जिसका जैसा कर्म होता है। जिसका जैसा ज्ञान होता है। उसके अनुसार कोई जीव किसी शरीर को प्राप्त होता है, कोई किसी को। कोई वृक्षों में, कोई पशुओं में, कोई मनुष्यों में चला जाता है और कोई मुक्ति को लाभ करता है।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीर त्वाय देहिनः
स्थाणुमन्ये प्रयद्यन्ते यथा कर्म यथाश्रुतम्।

(कठोपनिषद्)

अष्टम उपदेश- ब्रह्म के दर्शन आत्म लोक में, पितृ लोक में, गन्धर्व लोक में और ब्रह्म लोक में होते हैं। अपने आत्मा में अर्थात् आत्म लोक में उसके दर्शन ऐसे होते हैं जैसे दर्पण में कोई प्रतिबिम्ब देखता है।

पितृ लोक में- जो अपने बड़े-बूढ़ों का लोक है उसमें बड़े-बूढ़ों के सहारे उस देव के दर्शन ऐसे होते हैं जैसे कोई स्वप्न में किसी वस्तु को देखता है।

गन्धर्व लोक में- जो ज्ञानियों का लोक है, उस गन्धर्व लोक में ज्ञानियों के सहारे प्रभु के दर्शन ऐसे होते हैं जैसे जल की लहरों में कोई वस्तु

-भिन्न प्रकार से दीखती है।

ब्रह्म लोक ध्यानियों को लोक है। ब्रह्म में ध्यान करने वाले पुरुषों की सहायता से के दर्शन ऐसे होते हैं जैसे धूप और छांह को पृथक-पृथक देखता है। वह जगत् और को छाया और आतम के समान बिल्कुल ट और साफ-साफ देखने लगता है। यथा-

ादर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृ के।

ा अपसु परीव ददृशे तथा गन्धर्व लोके यातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥

(कठोपनिषद्)

नवम उपदेश- देव दर्शन के साधन-

ह आत्मा नित्य सत्य, पूर्ण तप, सम्यकज्ञान ौर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त किया जाता । शरीर के भीतर वह देव शुभ्र ज्योतिर्मय रूप विद्यमान है। यति लोग द्वेष आदि दोषों काक्षय रके ही उसे देख पाते हैं। आँख से वह नहीं खा जा सकता, दूसरेकी वाणी के उपदेश द्वारा । वह नहीं मिलता। अन्य की इन्द्रियों से भी सका ज्ञान नहीं होता। तपों से वह मिल सकता ? नहीं ज्ञान से भी नहीं मिलता, **परन्तु हाँ ज्ञान प्रसाद से शुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति विकल ध्यान द्वारा उसे देख लेता है।** ज्ञान ौर ज्ञान के प्रसाद में केवल इतना भेद है कि ान मनुष्य को मार्ग को चुन लेता है। ज्ञान प्रसाद से ही निष्कल ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

सत्येनलम्यस्तपसा ह्योषात्मा, सभ्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नियतम्।

अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हिशुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषः॥ (कठोपनिषद्)

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन।

यमेवेष वृणुत्ते तेन लम्मस्तस्यैषात्मा विवृणुते तनु स्वाम्॥

आत्मा बड़े-बड़े भाषणों से नहीं मिलता। तर्क वितर्क से भी नहीं मिलता, बहुत कुछ पढ़ने सुनने से नहीं मिलता, जिसको वह वर लेता है, वही उसे प्राप्त कर सकता है। उसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को खोलकर रख देता है।

नायमात्मा बलहीनेनलभ्यो न प्रमादात् तपसो वाप्यलिंगात्।

एतैरुपाथैर्यतते यस्तु विद्वांस्तयैषात्मा विशते ब्रह्मधाम॥ (मुण्डकोपनिषद्)

शारीरिक बल से हीन व्यक्ति आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। मानसिक प्रमाद में पड़ा व्यक्ति भी उसे प्राप्त नहीं कर सकता, अलिंग-प्रयोजनहीत तपस्या करने वाला भी उसे प्राप्त नहीं कर सकता, जो यह सब कुछ जानता-बूझता हुआ इन उपायों से उसे प्राप्त

करने का प्रयत्न करता है, आत्मा उससे पीठ फेर कर अपने आपको ब्रह्मधाम में छिपा लेता है, उसके सामने प्रकट नहीं होता।

सम्प्राप्येमृषयो ज्ञान तृप्ता कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्तः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥ (मुण्डकोपनिषद्)

ज्ञान से तृप्त आराधना में दिन-रात तत्पर, वीतराग, प्रशान्त ऋषि, आत्मा को प्राप्त करके अपने आपको परमात्मा के साथ जोड़ देते हैं। परमात्मा सबजगह पहुँचने वाला सर्वदेशी है वे अपने को परमात्माके साथ सब ओर से जोड़ लेते हैं। फिर परमात्मा के साथ जहाँ-जहाँ वह पहुँचता है, वहाँ-वहाँ आत्मा भी जा पहुँचता है। जब पल्ला उसके साथ बाँध दिया, तब छुड़ा कौन सकता है।

दशम उपदेश- भक्ति का फल- जो वेदान्त और विज्ञान से अर्थात् धर्म और साइंस द्वारा जीवन के लक्ष्य को भली-भाँति जान लेते हैं। जो संसार में संन्यास होकर ब्रह्मलोक में चले जाते हैं और बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं, यथा-

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चतार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्धसत्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्त काले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥

हृदय की सब गांठें खुल जाती हैं। मस्तिष्क के सब संशय छिनन-भिन्न हो जाते हैं। नाना प्रकार के कर्म जिनके पीछे मनुष्य मारा-मारा फिरता है सब छूट जाते हैं। जब उसके दर्शन हो जाते हैं, यथा-

भिद्यन्ते हृदयग्रन्थि शिछद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

हिरण्यमय कोष- सोने का खजाना जो तुम्हें दीखता है, उससे परे दूर एक आध्यात्मिक सुवर्ण का खजाना है, दुनिया के खजाने का सिक्का मैला है परन्तु उस खजाने का सिक्का निर्मल है। तुम इस सोने की चमक से चकाचौंध हो रहे हो। उसे देखो जो शुभ्र है। ज्योतियों की ज्योति है। संसार वाले सांसारिककोष के गीत गाते है। आत्मा को जानने वाले आत्मिक कोष पर बलिहारी जाते हैं। इस चमक के पीछे भागते हैं जिसके तुल्य संसार में कोई चमक नहीं।

(मुण्डकोपनिषद्)

(11) दुख का अन्त- जिस समय लोग चमड़े के समान आकाश को लपेट लेंगे उस समय बिना देव को जाने दुःख का अन्त हो सकेगा अर्थात् परमात्मा को जाने बिना दुःख का अन्त होना ऐसे ही असम्भव है जैसे विभु और अमूर्त आकाश लपेटना। यथा-

यदा चर्मदाकाशं वेष्ठयिष्यन्ति मानवाः।

देवमविज्ञाय दुखस्यान्तो भविष्यति॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

) **योग**- शरीर का हल्कापन, नीरोगता, ग्रों में अनासक्ति, शरीर में कान्ति, वाणी में ता, आन्तरिक-बाह्य सुगन्धि और मल-मूत्र न्यूनता, ये योग प्रवृत्ति के प्रथम पुरस्कार हैं।

-

त्वभारोग्य मलोलुपत्वम्, वर्णप्रसादं स्वर ठवं च।
गश्शुभ्रौ मूत्रपुरीषमल्पम् योगप्रवृत्तिं प्रथमां न्ति ॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद्)

3) **योगी**- योगी को न रोग होता है, न वृद्ध वस्था प्राप्त होती है और न उसकी ासामयिक अकाल मृत्यु ही होती है।

तस्य रोगो न जरा न मृत्युः- प्राप्तस्य गाग्निमयं शरीरम्। (श्वेताश्वतरोपनिषद्)

पिछले जन्म में साधना कर चुकने के कारण व्य गुणों को पाकर उत्पन्न हुए हैं वह 'देव' न्होंने साधना द्वारा इस जन्म में दिव्य गुण त किए हैं वह 'साध्य' जो साधारण गुणों ले हैं वह 'मनुष्य' तथा हीन कर्म वाले पशु र पक्षी ये सब उसी प्रभु द्वारा उत्पन्न किए गए यथा।

माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः साध्याः।
ष्याः पशवो वयांसि॥ (मुण्डकोपनिषद)

4) **संसार रूप नदी का वर्णन**- आँख, नाक, कान, वाणी और त्वचा ये जिस में पाँच उद्गम स्थानों के कारण, जो उग्र और वक्र अर्थात् तेज और टेढ़ी है। पाँच प्राण अथवा पाँच कर्मेन्द्रियां जिसमें तरंगे हैं। पाँच प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान का मूल 'मन' जिसका कारण है। रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श पाँच विषय जिसमें आवर्त अर्थात् भंवर है। जिनमें प्राणी डूब-डूब मरते हैं। जो गर्भ-दुःख, जन्म-सुख, व्याधि-दुख और मरण-दुख अधिवेग वाली, प्रवाह है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, पांच क्लेश जिसके पाँच पर्व हैं उस संसार रूपी नदी को जानना चाहिए।

पंच प्राणोर्मि पंच योन्युग्रं वक्रां, पंच प्राणोर्मि पंच बुद्धयादि मूलाम्।
पंचावर्ता पंच दुखोपवेगाम्, पंचाशद्भेदां पंचपर्वामधीमः॥ [श्वेताश्वेत.]

ईश्वर को सभी मानते हैं इसलिए विश्व शान्ति इसी ईश्वरीय ज्ञान वेद से संभव है।

●

आर्य समाज-अविद्या, कुरीतियों, पाखण्ड व जाति प्रथा जैसी सामाजिक बुराईयों को दूर करने वाला तथा सत्य ज्ञान व सनातन संस्कृति का प्रचारक है।

सार्वदेशिक सभा के कार्यकारी प्रधान श्री आनन्द कुमार आर्य का स्वागत करते हुए
सभा प्रधान भाई बीरेन्द्र जी (विधायक) एवं सभा कोषाध्यक्ष श्री मुकेश राय एवं सदस्यगण।

ओ३म्

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उप सभा बिहार एवं बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना के मार्गदर्शन में मगध प्रमण्डलीय आर्य सभा एवं आर्य समाज नेमदारगंज नवादा (बिहार) के तत्वाधान में

मगध प्रमण्डलीय आर्य महासम्मेलन 2015
एवं
चतुर्वेद शतकम् महायज्ञ

योग, आयुर्वेद, एक्यूप्रेशर, स्टीमबाथ, नेचुरोपैथ चिकित्सा शिविर

उद्घाटनकर्त्ता

स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती, सीकर
प्रकाण्ड वैदिक विद्वान एवं संसद सदस्य

भजनोपदेश

बहन संगीता आर्या, सहारणपुर
भजन गायिका

योगाचार्य

आचार्य उमाशंकर आर्य
एवं
देवगोप आर्य

यज्ञ के ब्रह्मा

आचार्यहरिशंकर अग्निहोत्री, आगरा
सरल वक्ता उदभट विद्वान

मुख्य वक्ता

डॉ. सारस्वत मोहन मनीषी, नई दिल्ली
ओजस्वी वक्ता, अर्न्तराष्ट्रीय कवि

भव्य शोभा यात्रा 29 नवम्बर 2015 को अपराह्न 2 बजे से

समय सारणी : प्रतिदिन प्रातः 5 से 7 बजे तक योग शिविर एव 8 से 12 बजे तक यज्ञ, भजन, प्रवचन एवं वेद कथा

दोपहर : 2 से 5 बजे तक चिकित्सा शिविर

संध्या : 5.30 बजे से रात्रि 10 बजे तक, भजन, प्रवचन एवं काव्य पाठ

मुख्य अतिथि-

तिथि: 29, 30 नवम्बर एवं 1, 2 दिसम्बर 2015 | स्थान : दुर्गा मण्डप प्रांगण नेमदारगंज

निवेदक :-
मगध प्रमण्डलीय आर्य सभा, गया

डॉ. बच्चू लाल आर्य प्रधान 9801035210	डॉ. रामप्यारे प्रसाद मंत्री- 8757558795 मगध प्रमण्डलीय आर्य सभा	सत्योम शास्त्री कोषाध्यक्ष 8409291049	डॉ. यू. एस. प्रसाद, स्वागताध्यक्ष प्रधान आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि, उप सभा, बिहार	डॉ. के. के. सिन्हा, प्रधान युवा आर्य समाज बिहार पं. संजय सत्यार्थी, मंत्री संयोजक- 9006166168 बि. रा. आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना

आर्य समाज नेमदारगंज के पदाधिकारी

अश्वनी कुमार, प्रधान 9905849133	संत शरण आर्य, मंत्री 9122258982	लखी नारायण आर्य, कोषाध्यक्ष 7739082124	सत्यदेव प्र. आर्य, मरूत संरक्षक

प्रेषक :
सभा-मंत्री
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला
पटना-८०० ००४

मुद्रित सामग्री

सेवा में,
श्री/मेसर्स.........................
मो0.........................
पी0.........................
जिला.........................
(प्रेषिती के न मिलने पर यह अंक प्रेषक को ही लौटा दें।)

स्वत्वाधिकारी, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 के लिए संजय कुमार (सत्यार्थी) (मंत्री) द्वारा जय उमा प्रिन्टर्स, पटना द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।